गोपालतापनी उपनिषद्

GOPALTAPNI UPNISHAD

मूल और भाषाटीका सहित

जिसको—

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्माने

सम्पादित कर

सनातनधर्म प्रेस

मुरादाबादमें छापकर प्रकाशित किया

Printed & Published-

by Ramswarup Sharma

AT THE

SANATANDHARM PRESS

MORADABAD.

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका

वेद दो भागोंमें बटा हुआ है, एक मन्त्रभाग और दूसरा ब्राह्मणभाग। उपनिषद् ब्राह्मणके अन्तर्गत अरण्यके भागमें है। संहिताभाग वा मन्त्रभागमें यज्ञादि कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले स्तोत्र और मंत्र हैं। ब्राह्मणभागमें साधारणतः गृहस्थके कर्त्तव्य यज्ञादिका विधान आदि लिखा है। आरण्यकभाग में साधारणतः अरण्यचारियोंका कर्त्तव्य है। आरण्यकके ब्रह्मत्वप्रतिपादक उपनिषद्भागको ज्ञानकाण्ड कहते हैं। उपनिषद् एक प्रकारसे ब्राह्मण के अन्तर्गत हैं। ब्राह्मण प्रधानतः यज्ञकी विधिसे पूर्ण हैं इस कारण कर्मकाण्ड हैं और मंत्र भी कर्मकाण्ड है, केवल उपनिषद् ही ज्ञानकाण्ड है। इस प्रकार ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्डके भेदसे भी वेद दो भागोंमें विभक्त है। ब्राह्मण और उपनिषद् कर्म और ज्ञानकाण्डरूपसे पृथक् २ होनेके कारण अलग २ कहे जाते हैं। इस प्रकार वेद-मन्त्र वा

संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद् इन तीन भागोंमें बँटे हुए हैं।

यजुर्वेदमें का ईशावास्य उपनिषद् ब्राह्मणांशके आरण्यकभागके अन्तर्गत नहीं है, संहिताभागके अन्तर्गत है। ईशावास्य उपनिषद् शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनी शाखाके संहिता--ग्रन्थका अन्तका अध्याय है।

उपनिषद्में बहुतसे स्थानोंमें मन्त्रभाग भी लिया गया है। वास्तवमें उपनिषद् ब्राह्मणप्रधान संहिता-प्रधान और आरण्यकप्रधान तीनों ही प्रकारके मिलते हैं। आजकल जो ग्रन्थ वेदके नामसे छपे हैं वह वेदके संहितांश वा मन्त्रभाग मात्र हैं। यज्ञ आदिका प्रचार न होनेके कारण ब्राह्मणभागका बहुतसा अंश लुप्त होगया है और जो है उसका भी प्रायः पठनपाठन नहीं होता। जिन्होंने वेदका ब्राह्मणभाग देखा है और तन्त्र शास्त्रका भी परिचय है वह देख सकते हैं, कि—तन्त्रमें कही हुई बहुत सी क्रियाएँ ब्राह्मणभागमें से लीगयी हैं। बहुतसे स्थलोंमें ब्राह्मणके मन्त्र तन्त्रमें अविकल ले लिये गये हैं। वास्तवमें आजकलके बहुतसे लोगोंका यह जो संस्कार है, कि-तन्त्र शास्त्रका वेदके साथ कुछ संबंध नहीं है, वह भ्रममें हैं। पहिले सामवेदके सहस्र, अथर्ववेदके पचास, यजुर्वेदके एकसौ नौ और ऋग्वेद के इक्कीस, इसप्रकार सब एक सहस्र एक सौ अस्सी

उपनिषद् थे, इस समय वह सब नहीं मिलते। मुण्डक उपनिषद्में एकसौ आठ उपनिषदोंका वर्णन है और वह अब भी मिलते हैं। इन एक सौ आठ उपनिषदोंमें सामवेदके १६ उपनिषदोंके नाम ये हैं— अव्यक्त, आरुणि, कुण्डिका, केन, छान्दोग्य, जाबालदर्शन, जाबाली, महत्, मैत्रायणी, मैत्रेयी, योगचूड़ामणि, रुद्राक्ष, वज्रसूची, वासुदेव, संन्यास और सावित्री शुक्ल यजुर्वेदके १६ उपनिषदोंके नाम ये हैं अध्यात्म, ईशावास्य, जाबाल, तारसार, तुरीयातीत त्रिशिखी, निरालम्ब, परमहंस, पैङ्गल ब्राह्मणमण्डल ब्राह्मणद्वयतारक, भिक्षु, मंत्रिका, मुक्तिका, याज्ञवल्क्य, बृहदारण्यक, शाटयायनी, सुबाल और हंस

कृष्ण यजुर्वेदके ३२ उपनिषदोंके नाम ये हैं - अक्षि अमृतनाद, अमृतबिन्दु, अवधूत, एकाक्षर, कठरुद्र, कठवल्ली, कलिसन्तारण, कालाग्निरुद्र, कैवल्य, क्षुरिका, गर्भ, तेजोबिन्दु, तैत्तिरीय, दक्षिणामूर्त्ति, ध्यानबिन्दु,, नारायण, पञ्चब्रह्म, प्राणाग्निहोत्र, ब्रह्म ब्रह्मविद्या, योगकुण्डलिनी, योगतत्त्व, योगशिखा, वराह, शारीरक, शुकरहस्य, श्वेताश्वतर, सर्वसार, स्कन्द, सरस्वती, रहस्य और हृदय।

ऋग्वेदके १० उपनिषदोंके नाम ये हैं—अक्षमालिका, आत्मप्रबोध, ऐतरेय, कौषीतकी, त्रिपुरा, नादबिन्दु, निर्वाण, मुद्गला, बह्वृच और सौभाग्य।

अथर्ववेदके ३१ उपनिषदोंके नाम ये हैं अथर्वशिखा, अथर्वशिर, गणपति, गारुड़, गोपालतापनी,

सीता, जावाल, त्रिपुरातपन, दत्तात्रेय, देवी, नारद परिव्राजक, नृसिंहतापनी, परब्रह्म, परिव्राजकान्न- पूर्णा, परमहंस, पाशुपत, प्रश्न, भस्म, भावना, महा नारायण, महावाक्य, माण्डूक्य, मुण्डक, रामतापनी, रामरहस्य, बृहज्जावाल, शरभ, शांडिल्य, सूर्यात्म, हयग्रीव और कृष्ण ।

"उपनिषद्" शब्दका प्रकृतिप्रत्ययगत अर्थ यह है कि–"उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मविद्या अनया इति" जिसके द्वारा ब्रह्मविद्या प्राप्तकी जाय वह उपनिषद् कहलाता है । उप और नि उपासर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर उपनिषद् शब्द बनता है । उप- निषद्का दूसरा नाम है वेदान्त । उत्तरमीमांसा वा वेदान्तदर्शन उपनिषद्की भित्ति पर ही स्थित है । वेदान्त शब्दका अर्थ है वेदका अन्त । इससे वेदका शेष अंश भी लिया जाता है अथवा वेदका अंतिम तात्पर्य जिसके पढ़नेसे सिद्ध हो वही उप- निषद् वा वेदान्त है । वेद शब्दका प्रकृतिप्रत्ययगत अर्थ है अनन्त ज्ञान । योगरूढ़ अर्थसे ऋक, यजु, साम और अथर्व तथा इनके भिन्न२ अंश संहिता ब्राह्मण आदि लिये जाते हैं । परन्तु समस्त ही ज्ञान वेदके अन्तर्गत मानागया है, यह बात अष्टादश विद्याओं की बातका विचार करनेसे ही मालूम होगी । स्मृति पुराण इतिहास आदि सब ही वेदमूलक हैं । शिक्षा कल्प ज्योतिष छन्द निरुक्त मीमांसा न्याय पुराण मनु आदि स्मृतियें आयुर्वेद धनुर्वेद गन्धर्ववेद और

अर्थशास्त्र आदि सब ही वेदके अन्तर्गत हैं। वेदके सिवाय और कुछ है ही नहीं, इसलिये वेद शब्दका योगरूढ़ अर्थ लेने पर भी विश्वका सब ज्ञान उसके अन्तर्गत ही होता है। भगवान् शङ्कराचार्यने उपनिषद् शब्दका यह अर्थ किया है कि—"उपनिषच्छब्देन व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्यवस्तुविषया विद्योच्यते तादर्थ्याद् ग्रन्थोऽप्युपनिषत्, उपनिषदिति उपनिपूर्वस्य सदेर्विशरणगत्यवसादनार्थस्य रूपमाचक्षते। संसारबीजस्य विशरणात् विनाशात् परब्रह्मगमयितृत्वाद्गर्भजन्मजरामरणाद्यनर्थस्यावसादयितृत्वादुपनिषत्समाख्ययाऽध्यन्यकृतां परंश्रेय इति ब्रह्मविद्योपनिषदुच्यते।" इसका मोटा२ अर्थ यह है, कि-ग्रन्थमें जिस विद्याका वर्णन कियाजायगा उसको और इस ग्रन्थको भी उपनिषत् कहा जाता है। उपनि उपसर्गके आगे जो सद् धातु है उसका अर्थ विशरण, गति और अवसादन है। ब्रह्मविद्या संसारबीजका विशरण वा विनाश करती है, परब्रह्मकी प्राप्ति कराती है और गर्भ जन्म जरा मरण आदिका अवसादन करती है, इसलिये इस का नाम उपनिषद् है। पश्चिमी विद्वान् उपवेशन अर्थयुक्त सद् धातुसे उपनिषत् पद सिद्ध करते हैं। वह कहते हैं कि-उपनिषत् में ही गुरुके समीप शिष्यके उपवेशन (बैठने) के विषयमें "उपसद्, उपसन्न" आदि पदोंका प्रयोग देखनेमें आता है, इसलिये शिष्य गुरुके समीप बैठ

कर जिन विद्याओंको सुनते थे उनका नाम उपनिषद् है और ये सब विद्यायें प्रायः अरण्य (वन) में उपदेश कीजाती थीं इसलिये आरण्यक कहलाती हैं। उपनिषत् शब्दका धातुगत अर्थ चाहे सो हो, इस समय उपनिषद् पदसे ब्रह्मविद्या ही लीजाती है। इस उपनिषद्का एक और नाम पराविद्या है। शास्त्र में वेदके संहिता और ब्राह्मणभागकी अपेक्षा उपनिषद्को अतिऊँचा स्थान दियागया है। "तत्रापरा-ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते"। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये अपरा (निकृष्ट) विद्या हैं। जिस (उपनिषद् आदि) के द्वारा उस परब्रह्मको जाना जाय वह परा (श्रेष्ठ) विद्या है। ऐसा मुण्डक उपनिषद् का लेख है। यहां ऋग्वेदपदसे संहिता और ब्राह्मण भागमात्र लियाजाता है।

भारतवर्षमें एक ऐसा समय था, कि–जिस समय ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करनेके लिये लोग लालायित थे, और किसी भी ज्ञानमें उनके चित्तको सन्तोष नहीं होता था। धन स्त्री, पुत्र आदि उनको सुख नहीं देसकते थे, उनको ब्रह्मज्ञानके विना अपना जीवन निरर्थक मालूम होता था। "इह चेदवेदीदथ सत्य-मस्ति नचेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥"

(केनोपनिषद्)। अर्थात् मनुष्य ब्रह्मको जानलेय तब ही उसका जीवन सफल है, यदि ब्रह्मको नहीं जाना तो उसका बड़ाभारी नाश होगया अर्थात् उस को बारंबार जन्म मरण आदिका क्लेश सहना पड़ेगा, इसलिये धीर पुरुष सकल भूतोंमें परमात्मा को ज्ञानके द्वारा प्राप्त करके इस लोकसे उपराम या अमरभावको प्राप्त करते हैं।

भारतमें एक ऐसा समय था कि–जब स्त्री पतिसे कहती थी, कि–"येनाऽहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति" (बृहदारण्यक) अर्थात् जिससे मैं अमर नहीं होसकती उसको लेकर मैं क्या करूँगी ? यदि अमरभावकी प्राप्तिके विषयमें आप कुछ जानते हों तो कहिये ?। "तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुःसमाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति सर्वात्मानं पश्यति, नैनं पाप्मा तरति, सर्वं पाप्मानं तरति, नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति, विपापो विरजोऽविचिकित्सो ब्राह्मणो भवत्येष ब्रह्मलोकः सम्राडेनं प्रापितोऽसीति" आत्मवेत्ता पुरुष शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर आत्मामें ही आत्माको देखता है, पाप उसको नहीं छूसकता, वह सकल पापके पार होजाता है, पाप उसको सन्ताप नहीं देसकता, वह पापको भस्म कर डालता है, निष्पाप, निष्काम और सन्देहरहित होकर वह ब्राह्मण होजाता है।

उपनिषद्का लक्ष्य ब्रह्मज्ञान है, परन्तु समयके पलटा खानेके साथ २ ब्रह्मज्ञानकी ओरसे मनुष्यों का लक्ष्य उठ गया, जिस ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होजाने पर किसी ज्ञानका अभाव नहीं रहता, जो ब्रह्मज्ञान सब ही प्रकारके ज्ञानोंकी मूल है, वह इस समय अनावश्यक ज्ञानोंमें गिना जाने लगा है। याज्ञवल्क्य कहते हैं-"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्" अर्थात् ज्ञानचक्षुके द्वारा आत्माका दर्शन, शास्त्र और गुरुसे आत्माके विषयका श्रवण, न्याययुक्त तर्क आदिके द्वारा आत्माके विषयकी आलोचना तथा चित्त लगा कर उसके विषयका ध्यान करना चाहिये। हे मैत्रेयि! आत्माका दर्शन, श्रवण, अनुभव और भलेप्रकारसे अवगम होने पर विश्वके सकल पदार्थ अवगत हो-जाते हैं। इत्यादि श्रुतियोंके द्वारा जो सच्ची घोषणा होरही है, उसको आजकलके हिन्दू विकारी मस्तिष्क का प्रलाप कहनेमें जरा भी सङ्कोच नहीं करते, परन्तु भारतवर्षमें एक ऐसा समय था, कि--जब ब्रह्मज्ञान ही सब ज्ञानोंकी श्रेष्ठ मूल मानाजाता था और उस को पानेके लिये हिन्दू प्राणपणसे चेष्टा करते थे। आजकल जिस विद्याकी प्राप्ति करनेमें धन प्राप्तिकी संभावना न हो वह अविद्या मानीजाती है, इसलिये ब्रह्मविद्याकी ओरको हिंदूसमाजकी दृष्टि खेंचना कोई सहज काम नहीं है, परन्तु ब्रह्मविद्याके अतिमधुर

रसको जिसने एक वार पीलिया है उसको अनित्य धन यश, प्रतिष्ठा आदि किसीसे शान्ति नहीं मिल-सकती। उपनिषदोंमें जीवात्मा और परमात्माके वा जीव और ब्रह्मके एकत्व वा अभेदका वर्णन किया गया है।'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः' ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है.जीव और ब्रह्मके सिवाय और कुछ है ही नहीं। "यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्। यज्ज्ञानान्न परं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥" अर्थात् जिसको पाजाने पर और कुछ पानेकी आवश्यकता नहीं रहती, जिस की प्राप्तिके सुखके सिवाय और किसी सुखका प्रयो जन नहीं है, जिसके विषयके ज्ञानके सिवाय और किसी ज्ञानका प्रयोजन नहीं है उसको ही ब्रह्म जान। ब्रह्मज्ञान ही उपनिषद्का वक्तव्य विषय है।उपनिषद् में दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र दोनोंका संमिलन है। उपनिषद् श्रुति अनादि अनन्त है, इसमें जिस सत्य का प्रचार कियागया है वह युक्तियुक्त है, इस बात को भी भगवान् शङ्करस्वामीने शारीरक भाष्यमें दिखाया है। धर्मशास्त्र और तर्कशास्त्रमें विरोध कैसे होसकता है? सत्यको प्रतिपादन करना ही यदि दोनों का उद्देश्य है तो परस्परमें विरोध कैसे हो सकता है? और देशोंमें दर्शन विज्ञान आदि शास्त्र धर्मशास्त्र से विरुद्ध हैं.एकके साथ दूसरेका सम्बन्ध नहीं है, एकको सत्य मानने पर दूसरेको सत्य नहीं माना जा सकता परन्तु भारतके धर्म और विज्ञान परस्पर

सापेक्ष हैं, एकको दूसरेकी आवश्यकता है। भारतमें युक्ति और आप्तवाक्यवा ऋषिवाक्यने परस्पर प्रतिकूलता न करके अनुकूलता प्राप्तकी है. जिनका ज्ञान विकसित होगया है वे देखेंगे कि—भारतमें किसी शास्त्रके साथ अन्य शास्त्रका विरोध नहीं है। जो कुछ विरोध दीखता है, उसका कारण अज्ञान है। जो लोकहितकारी है वह अवश्य ही युक्तिके अनुकूल है और वही धर्म है, वही वेद है और वही ऋषिवाक्य है। जो सनातन शास्त्रके बाहरी परदेको उघाड़कर उसके भीतर घुसेगें वह देखसकेंगे, कि—सनातन शास्त्रोंमें परस्पर जरा भी विरोध नहीं है। जो कुछ विरोध दीखता है वह केवल स्वार्थवश कीहुई व्याख्याओंके कारण है।

उपनिषद् का मूलमन्त्र बृहदारण्यक उपनिषद्के पांचवें अध्यायके दूसरे ब्राह्मणमें स्पष्ट रूपसे कह दिया है- 'त्रयः प्राजापत्याः प्रजापतौ पितरि ब्रह्मचर्यमूषुर्देवा मनुष्या असुराः, उषित्वा ब्रह्मचर्यं देवा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच 'द' इति व्यजासिष्टा इति, व्यजासिष्मेति होचुर्दाम्यतेति न आत्मेत्योमिति होवाच व्यजासिष्टेति।" देवता, मनुष्य, असुर, प्रजापतिकी इन तीन संतानोंने प्रजापतिके समीप ब्रह्मचारीका व्रत स्वीकार किया था। ब्रह्मचर्यके अन्तमें देवताओंने प्रजापतिके पास जाकर उपदेशकी प्रार्थना की, उन्होंने देवताओंसे

'द' अक्षर कहकर बूझा कि—क्या तुम समझगये ? उन्होंने कहा, कि-हां समझगये, आपने हमे 'दाम्यत, अर्थात् इन्द्रियसंयम करके हमें दान्तस्वभाव होनेका उपदेश दिया है । प्रजापतिने कहा- ॐ, हां ठीक है, तुम मेरी बातको ठीक समझ गये,इससे सिद्ध होता है, कि-प्रजापतिका पहिला उपदेश इन्द्रियोंकी मनमानी प्रवृत्तिका दमन करना है । "अथ हैनं मनुष्या ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदेवाक्षरमुवाच द इति व्यजासिष्टा इति,व्यजासिष्मेति होचुर्दत्तेति न आत्मेत्योमिति व्यजासिष्टेति ।,, अर्थात् जब मनुष्योंने पूजापतिसे उपदेश देनेको कहा तो पूजापतिने फिर 'द' अक्षर कह दिया और बूझा,कि-तुम समझगये ? उन्होने कहा, समझगये, आपने हमैं 'द' अक्षरसे 'दत्त' अर्थात् लोभके स्वभावको त्याग दो, अकेले ही सब धनको न भोगो किन्तु दूसरोंको भी धन दो, यह उपदेश दिया है । प्रजापतिने कहा ॐ, हाँ तुम ठीक समझगये ।"अथ हैनमसुरा ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति तेभ्यो हैतदक्षरमुवाच 'द' इति व्यजासिष्टेति व्यजासिष्मेति होचुर्दयध्वमिति न आत्मेत्योमिति होवाच व्यजासिष्टेति ॥" ऐसे ही असुरोंने उपदेशकी प्रार्थना करी तब प्रजापतिने 'द' यह अक्षर कहकर बूझा, कि-क्या तुम समझ गये? उन्होंने कहा कि-हां समझगये आपने हमे 'द' इस अक्षरसे 'दयध्वम्' क्रूरवृत्तिको छोड़कर दयालु होने

का उपदेश दिया है, प्रजापतिने कहा—हां तुम ठीक समझगये।

'तदेतदेवैषा दैवी वागनुवदति स्तनयित्नुर्द द द इति, दाम्यत दत्त दयध्वमिति, तदेतत्त्रयं शिक्षेद्दमं दानं दयामिति।" आजकल भी यह वज्ररूप (मेघों की गड़गड़ाहटरूप) दैवी वाक् द द द इन तीन दकारोंके द्वारा कहती है, कि—द दाम्यत-इन्द्रियसंयम करो, द दत्त दान करो और द दयध्वम् दयालु होजाओ, इसप्रकार ये तीन दकार तीन शिक्षायें देते हैं। वज्रकी ध्वनिमें द द द ऐसा तीनबार शब्द होता है, ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है, उसमें आध्यात्मिकभावका संबन्ध है। पाठक यहां गीताके—"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥" अर्थात् काम, क्रोध, और लोभ यह तीन प्रकारका आत्मा का नाश करने वाला नरकका द्वार है, इसलिये इन तीनोंको त्याग देय। इस वाक्यको स्मरण करो। दूसरे शब्दोंमें बृहदारण्यकमें भी यही उपदेश दिया है। कामको त्यागो, इन्द्रियोंको जीतो यही है 'दाम्यत'। क्रूर स्वभावको छोड़ो, जीवोंके ऊपर दया दिखाओ, यही है 'दयध्वम्'। लोभको त्यागो, आप ही सब मत खा जाओ, दूसरोंको भी दो यही है 'दत्त'। यही उपनिषद्का मूल मंत्र है। जो इस मूलमंत्रका पालन करनेको तयार नहीं हैं, उनका उपनिषद् या वेदांतशास्त्रको पढनेका परिश्रम

पढ़नेका परिश्रम वृथा है। उपनिषद्का यह द द द का उपदेश अब भी वज्रके द्वारा उच्चारित होता है। परंतु जड़बुद्धि पुरुष सब वस्तुओंमेंसे जड़भाव को ही लेते हैं, वह आध्यात्मिकभावको ग्रहण ही नहीं कर सकते, इसलिये द द द ऐसी जो वज्रध्वनि होती है, उसमें वैदिक सत्यकी सत्ताका अनुभव नहीं कर सकते। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा आदिके अनुशीलनकी चेष्टाके सिवाय उपनिषद्का और कोई फल ही नहीं है, किसी ग्रंथको पढ़ने मात्रसे कोई पंडित नहीं हो सकता, भगवद्भक्त तुलसीदासने ठीक कहा है, कि- "पुस्तकको पढ़नेसे मनुष्य केवल तोता पक्षी बन जाता है, पंडित नहीं हो सकता, प्रेमका एक अक्षर पढ़नेसे भी पंडित हो जाता है।" इस बातका हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। जब तक चरित्रसंयम नहीं होगा, जब तक मनुष्य दयालु होना नहीं सीखेगा और जबतक लोभको त्यागना नहीं सीखेगा तबतक उपनिषदोंके पढ़नेका कुछ भी फल नहीं है। यदि उपनिषद्के गूढ़ मर्मको समझना हो तो ब्रह्म-चर्यको धारण करके चरित्रकी उन्नति करना चाहिये, यदि उपनिषद्रूप वृक्षका फल चखना हो तो सबसे पहले अपने चरित्रको संयत करो, नियमोंसे जकड़ दो। यह जो कुछ भी कहा गया इससे यही समझना चाहिये, कि-जो पुरुष क्रूर, लोभी वा कामी हो उसको उपनिषद्के पढ़नेका अधिकार नहीं है।

जो यम नियम आदिके द्वारा चरित्रको संयत करके सत्त्वगुणी बन गये हैं अर्थात् जिनकी सात्त्विक वृत्ति राजस वा तामस वृत्तिसे प्रबल होगयी है वे ही उपनिषद्को पढ़नेके अधिकारी हैं। इससे यह भी सिद्ध होगया, कि-उपनिषद् त्रिगुणभित्ति-प्रकृत-वर्णाश्रम धर्मका विरोधी नहीं है। जिस सत्त्वगुणी पुरुषकी शास्त्रके अनुसार चित्तशुद्धि होगई है केवल वह ही उपनिषद्को पढ़नेका अधिकारी है।

उपनिषद् यद्यपि ज्ञानभागके अन्तर्गत है तो भी कर्ममार्गका विरोधी नहीं है, कर्मके द्वारा जिनकी चित्तशुद्धि होगयी है, वह ही उपनिषद्को पढ़नेके अधिकारी हैं। गीतामें कहा हुआ निष्काम धर्म ही उपनिषद्का धर्म है, ऋक् आदि वेदोंका वक्तव्य विषय सकाम धर्म है। उपनिषद्का वक्तव्य विषय निष्कामधर्म है. इसलिये वेद् अपरा और उपनिषद् परा विद्या है।

भगवद्गीता उपनिषदोंमेंसे ही संग्रह कीगई है, यह बात कठ श्वेताश्वतर आदि दो चार उपनिषदों को पढ़नेसे ही पाठकोंकी समझमें आसकती है। गीतामाहात्म्यमें भी लिखा है, कि-"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भो-क्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥" सब उपनिषद् गौरूप हैं, श्रीकृष्ण दुहनेवाले ग्वाल हैं, अर्जुन बछड़ा है और यह महान् गीतामृत दुग्धरूप है तथा विवेक-वान् सुधी इसको पीनेका अधिकारी है।

उपनिषद् ज्ञानियोंकी वस्तु है, बालकोंकी वस्तु नहीं है। सनातन शास्त्रकी शिक्षा अधिकारभेदसे जिस उत्तमताके साथ प्रचलित है, यह बात और किसी देशमें वा किसी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आती ब्रह्मज्ञान--जीव ब्रह्म एक है, ब्रह्मके सिवाय जगत्में और कुछ है ही नहीं। "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"। सब ही वस्तुएँ उस ब्रह्मका विवर्त्तमात्र हैं, इत्यादि दुरूह ज्ञान सबकी ही बुद्धियोंमें नहीं समासकता, इसकारण सनातन शास्त्र भिन्न २ आश्रम वालोंको भिन्न २ प्रकारकी शिक्षा देता है। जिस वस्तुसे बालकका शरीर बढ़ता है, उससे युवा वा वृद्धका शरीर नहीं बढ़ सकता, आध्यात्मिक विषयमें यही नियम है। साकार आदि उपासना और यज्ञ आदि क्रियाओंकी जो भिन्न २ व्यवस्था शास्त्रमें देखनेमें आती है, उसका भी यही कारण है। बालक जब तक अपने आप नहीं चल सकता तबतक उसको हाथ पकड़कर चलाना पड़ता है, जब अपने आप चलने लगता है तब उसका हाथ नहीं पकड़ा जाता। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी यह आश्रमविभाग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र यह वर्णविभाग भी केवल इस ही अधिकार भेदसे शिक्षा देनेके लिये सदासे चला आता है। अन्तिम उद्देश्य सबका ही ब्रह्मको पाना है, परन्तु जिसकी जितनी आध्यात्मिक उन्नति होगी उसको

उतना ही ज्ञान देकर क्रम २ से ब्रह्मज्ञानकी ओरको ले जाना होगा।

उपनिषद् यह शिक्षा देता है, कि—विश्वमें ब्रह्म के सिवाय और कोई पदार्थ नहीं है। ब्रह्म शब्दका अर्थ है "बृहत्वात् अपरिच्छिन्न-ब्रह्मात्मकत्वात् बृंहणत्वात् वेदादीनां कारणत्वात् आविर्भावकर्तृत्वादिति यावत् ॥" बृहत् अर्थात् देश, काल, वस्तुके द्वारा अपरिच्छिन्न और बृंहण अर्थात् वेदादि सकल वस्तुओंका जो कारण है उसको ही ब्रह्म कहते हैं।

यह ब्रह्म 'एकमेवाद्वितीयम्' है इसका वास्तविक अर्थ यह है, कि–विश्वमें ब्रह्मके सिवाय दूसरा पदार्थ नहीं है। भेद तीन प्रकारका होता है–स्वगत, सजातीय और विजातीय। एक मनुष्यका स्वगत भेद यह है कि–उसके हाथ पैर मुख आदि भिन्न २ अङ्ग हैं, इनसे वह भिन्न है, यह ही उसका स्वगत भेद है। किसी दूसरे मनुष्यके साथ जो उसका भेद है, वह उसका सजातीय भेद है। मनुष्यको छोड़कर जो और पशु आदि हैं, उनके साथ जो मनुष्यका भेद है वह विजातीय भेद है। एक शब्द का अर्थ है स्वगतभेदरहित, एव शब्दका अर्थ है सजातीय भेदरहित और अद्वितीय शब्दका अर्थ है विजातीय भेदरहित। इस नाम-रूपात्मक विश्वकी उत्पत्तिसे पहिले इस एकमात्र ब्रह्मसे भिन्न, 'एकमेवाद्वितीयम्' से भिन्न और कुछ नहीं था। घड़े

और मट्टीको ले लो। घड़ा मट्टीका विकारमात्र है, दोनों ही एक पदार्थ हैं, परन्तु घट स्थायी नहीं है, आज है कल नहीं है, यहाँ है वहाँ नहीं है किन्तु मृत्तिका उससे अधिक स्थायी है। जैसे घटसे ऊपर मृत्तिकामें पहुँचे, तैसे ही मृत्तिकासे ऊपर मृत्तिकाके कारणमें चलो तो मालूम होगा कि—कार्यकी अपेक्षा कारण अधिक स्थायी वा सत्य होता है। इस ही क्रमसे बढ़ते हुए जगत्‌के मूल कारण की ओरको चले चलो, वही एकमात्र सत्य और वही एकमेवाद्वितीयम् है। वही इस विश्वका समवायि और निमित्त कारण है। "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम्।" जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ी) अपने शरीरमेंसे तंतुओंको (जालेको) बाहर करती है, जैसे पृथिवीमेंसे ओषधियें उत्पन्न होती हैं और जैसे जीवित पुरुषमें से केश लोम उत्पन्न होते हैं उस ही प्रकार अक्षर अर्थात् परब्रह्मसे यह विश्व उत्पन्न होता है।

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्त-

रात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥" अर्थात्—जैसे एक अग्नि भुवनमें प्रविष्ट होकर वस्तुओंके भेद से भिन्न २ रूपोंका हो रहा है तैसे ही सकल भूतों का अन्तरात्मा नाना प्रकारकी वस्तुओंके भेदसे भिन्न २ रूपोंका होरहा है और इन सब वस्तुओंके बाहर भी वही है। जैसे वायु भुवनमें प्रविष्ट होकर वस्तुओंके भेदसे तिन २ रूपों वाला होरहा है तैसे ही सकल भूतोंका अन्तरात्मा अनेकों वस्तुओंके भेदसे तिन २ वस्तुओंके रूपवाला होरहा है और उनके बाहर भी है। सब लोकोंका चक्षुःस्वरूप सूर्य जैसे चक्षुसे ग्रहणकी जाने वाली अपवित्र वस्तुओं के साथ लिप्त नहीं होता है तैसे ही सकल भूतोंका एकमात्र अन्तरात्मा संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता है ॥

"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं यथा सौम्यैकेनैव लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यादित्यादि ॥" (छान्दोग्योपनिषद्) मृत्तिकाके विकार अर्थात् घटका नाम वाक्यका अवलम्बनमात्र है, केवल मृत्तिका सत्य है, ऐसे ही इस विश्वके सकल पदार्थ केवल वाक्यका अवलम्बनमात्र हैं, विश्वका कारण केवल वह परब्रह्म ही सत्य है।

उपनिषद्के मतमें ब्रह्मका स्वरूप जाननेमें नहीं आसकता। जब ब्रह्मज्ञान होजाता है, तब द्वैत भाव

विलीन होजाता है। जब जीव ब्रह्म होगया तो फिर ब्रह्मज्ञान रहेगा ही कैसे? उस समय तो जानने वाला ज्ञाता और जानने योग्य ज्ञातव्य विषयका कुछ भेद रहता ही नहीं। उस समय तो जीव पर-ब्रह्म होजाता है। फिर परब्रह्मको जानै कौन? "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति,तदितर इतरं शृणोति,तदितर इतरमभि-वदति,तदितर इतरं मनुते,तदितर इतरं विजानाति, यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्, तत् केन कं जिघ्रेत् केन कं पश्येत्, केन कं शृणुयात्, केन कमभिवदेत्, केन कं मन्वीयात्, केन कं विजानीयात्, येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्, विज्ञातारमेवं केन विजानीयात्।" अर्थात्–जहाँ द्वैतभाव होता है तहाँ ही एक दूसरेको सूंघता है,एक दूसरेको देखता है, सुनता है, मनन करता है, जानता है,और जहाँ द्वैतभाव नहीं होता, अर्थात् विश्व ही ब्रह्मम्य है ऐसा ज्ञान होता है तहाँ कौन किसकी गन्ध लेय? कौन किसको देखै? कौन किसको सुनै? कौन किस का मनन करै और कौन किसको जानै?। जिसके द्वारा विश्वमेंके सकल पदार्थ जाने जाते हैं उस पर ब्रह्मको किसके द्वारा जाना जायगा? जो विज्ञाता है उसको और किसके द्वारा जानोगे?(बृहदारण्यक)।

भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं, कि–विषय और विषयी विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। एक दूसरेके स्थान

पर अधिकार नहीं कर सकता, विषय कभी विषयी नहीं होसकता। एक पदका कर्त्ता कभी कर्म नहीं होसकता, तथा कर्म कभी कर्त्ता नहीं होसकता, कर्त्ता चिरकाल कर्त्ता ही है और कर्म कर्म ही है, एक दूसरेके स्थान पर अधिकार नहीं करसकता। यह शरीर और नामरूपधारी सकल विश्व मेरे बाहर है, मैं वह नहीं हूं। वह विषय हैं मैं विषयी हूं। वह कर्म हैं मैं कर्त्ता हूं। वह जानने योग्य हैं, मैं जाननेवाला हूं। वह तुम हैं और मैं मैं हूं। मैं, मैं से भिन्न सकल नामरूपधारी विश्वको जान सकता हूं परन्तु मैं, मैं को कैसे जानसकेगा ?। विषयी-विषय, मैं-तुम, ज्ञाता और ज्ञान अथवा अस्मद् और युष्मद् विरुद्धधर्म वाले हैं। इस विषयी चिदात्मामें विषयधर्मोंके आरोपको अध्यास कहते हैं। एक पुरुष पहिले चाँदीको देख चुका है, चाँदी के कुछ गुण उसकी स्मृतिमें हैं, उस पुरुषने पीछे किसी समय सीपीको देखकर उसको चाँदी समझ लिया अर्थात् चाँदीके गुणोंका सीपीमें आरोप कर लिया, इसको ही अध्यास कहते हैं। ऐसा भ्रम तत्त्व-ज्ञान न होनेसे, अविद्या वा मायाके कारणसे होता है। इस भ्रमके कारणसे ही विषयी वा शरीरीका, विषय वा शरीर है ऐसा ज्ञान होता है-साक्षी वा ज्ञाता विषयी आत्मा विषय मालूम होने लगता है वास्तवमें मैं केवल मैं ही हो सकता है, मैं केवल मैंकी सत्ताको समझ सकता है, मैं मैं को जान नहीं

सकता। मैं केवल मैं से भिन्न सकल वस्तुओंको जान सकता है परन्तु मैं को नहीं जान सकता। मैं मैं को जानते ही मैं नहीं रहा, वह तुम वा युष्मत् होगया, कर्त्ता कर्म होगया, जो कि हो नहीं सकता परन्तु यद्यपि विषयी कभी विषयके धर्मोंवाला नहीं होसकता तथापि भ्रमके कारणसे मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, मैं धनी हूं, मैं दरिद्र हूं, यह मैं हूं, यह मेरा है इत्यादि मिथ्या ज्ञानकी बातें संसारमें सुनी जाती हैं। वह सब माया वा अविद्याके कारणसे होती हैं। इस अविद्याके कारण एक वस्तु दूसरी कहला जाती है। इस अध्यासको दूर करना ही वेदान्तका उद्देश्य है।

यह जो मैं तुझे देखरहा हूं, मैं तेरा क्या देखरहा हूं? तेरे हाथ, पैर, मुख, आदि, तेरा शरीर, विषय मात्र देखता हूं। तेरे रूप गुण विद्या, बुद्धि आदि को देखता हूं ये भी विषय हैं। इनमेंसे एक भी विषयी नहीं है, तेरे वास्तविक मैं को मैं नहीं देख पाता हूं, जो कुछ पाता हूं वह सगुण, माया वा उपाधियुक्त मैं है। तेरा वास्तविक वा निर्गुण मैं एक ही है, उसमें स्वगत सजातीय वा विजातीय भेद नहीं है। जैसे एक सूर्य समुद्रकी तरङ्गोंके संग से अनेक मालूम होता है, तैसे ही एक ही मैं-एक ही विषयी मायाके संयोगसे विविध मैं रूपमें दीखता है, वास्तवमें कोई भेद नहीं है। मेरा मैं, तुम्हारा

मैं और उसका मैं सबका मैं एक ही है । जैसे कि इस तरङ्गका, उस तरङ्गका और सब तरङ्गोंका सूर्य एक ही है । उपनिषद् वा वेदान्त शास्त्र उस एक मैं का ही वर्णन करते हैं । जो 'मैं' देश-काल और वस्तु-परिच्छिन्न नहीं है, इस बातको ही उपनिषद् नानाप्रकारकी युक्तियें और दृष्टान्तोंके द्वारा समझाता है। सर्वत्र मैं ही मैं हूं,इस अहम्भावका प्रसार ही वेदान्त शास्त्रका उद्देश्य है । तुम्हारे सगुण 'मैं' और मेरे सगुण 'मैं' में सजातीय भेद है, परन्तु तुम्हारे निर्गुण मैं और मेरे निर्गुण मैं में वह भेद नहीं है।

जैसे सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा ही प्रकाशमान है, उसका अस्तित्व जतानेके लिये किन्ही दूसरी बाहरकी किरणोंकी आवश्यकता नहीं है, तैसे ही मैं भी मैं के द्वारा ही प्रकाशित होता है, इस 'मैं' होसकते हैं, परन्तु वास्तविक मैं को जान नहीं सकते, जिसको जानते हैं वह सगुण मैं है । इस गुणके भीतर जो मैं है, वह होजाता है, जाना नहीं जाता यही उपनिषद्का मर्म है। इस मैं का यह नहीं है. वह नहीं है, इसप्रकार अतद्व्यावृत्तिसे वर्णन किया जाता है। विषयोंके अन्तर्गत सब ही वस्तुएं 'मैं' नहीं हैं, इसप्रकार वर्णन किया जासकता है । "स एष नेति नेतीत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यतेऽशीर्यो नहि शीर्यतेऽसङ्गो नहि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति

विज्ञातारमेव केन विजानीयामित्युक्तानुशासनासि"। अर्थात् केवल नहीं नहीं कहकर उसका वर्णन किया जा सकता है। वह अग्राह्य अव्यय, असक्त, वर्ण और वेदनासे रहित है। ज्ञाताको कैसे जानाजा सकता है? याज्ञवल्क्य ऋषिने अपनी पत्नी को इसप्रकार उपदेश दिया था।

ज्ञानमें तीनप्रकारके पदार्थोंका प्रकाश होता है-ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। यदि कोई कहै, कि-मैं ब्रह्म को जानता हूं तो समझलो कि-वह ब्रह्मज्ञानमें नहीं पहुँचा है। क्योंकि—इस ज्ञानमें 'मैं' पदके द्वारा ज्ञाताका, 'ब्रह्मको' इस पदके द्वारा ज्ञेयका तथा 'जानता हूं' इस पदके द्वारा ज्ञानका प्रतिपादन होता है। जबतक ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाताका एकत्व रूपसे प्रतिभास नहीं होता तबतक साधक त्रिपुटी भेदके राज्यमें विद्यमान है। वास्तविक ब्रह्मज्ञान निर्विकल्प है। उसमें ज्ञाता ज्ञेय, ज्ञान इस त्रिपुटी का भेद नहीं होता है ज्ञाता जीव जब अपनेको ज्ञेय वा ब्रह्म समझजाता है और ज्ञानको आत्मा वा ब्रह्मका स्वरूप निश्चय करलेता है उस समय त्रिपुटीभङ्ग होजाती है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानका एकत्व प्रतीत होता है। उस समय कौन किसको जानै? उस समय सब ही एकत्वज्ञानके रूपमें आजाता है, द्वैतबोध रहता ही नहीं। इस परम उच्च महान् एकत्वबोधका ही उपनिषदोंमें वर्णन किया है। जब सब कुछ ही एकमात्र एकत्व ज्ञानके

रूपमें आजाता है तो सिद्ध हुआ कि एकत्व ज्ञानमें पहुँचजाना ही जीवका चरमलक्ष्य और परम प्रार्थनीय है, यहां पहुँचते ही अभयकी प्राप्ति होजाती है, अमृतत्व मिलजाता है। अज्ञान कल्पित संसार-बन्धनसे मुक्ति होजाती है, यहां ही कृतकृत्यता है।

इस ही परमब्रह्म ज्ञान वा ब्रह्मभावको पानेकी रीति उपनिषदोंमें कही है। नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्र फलभोगविराग, शमदमादिसम्पत्ति और मुमुक्षुता इन चार साधनोंसे सम्पन्न होजाने पर ही उपनिषद् वा आत्मविद्यामें अधिकार होता है। कौनसा पदार्थ नित्य है, कौनसा पदार्थ अनित्य है, इस बातका निश्चय करना होगा अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही पारमार्थिक सत्य—नित्य है और सब परमार्थतः असत्य है—अनित्य है ऐसा समझना होगा संसारकी अनित्यता असत्यताका निश्चय करके इस लोकके और परलोकके सकल फलभोगोंकी कामनाको त्यागना होगा। शम (इन्द्रियसंयम) दम (मनका संयम) आदिको प्राप्त करना होगा। असार अनित्य संसारबन्धनसे मुक्ति पानेके लिये अटल निश्चय करना होगा। फिर आत्मविचारके द्वारा आत्मसाक्षात्कारमें पहुँचना होगा। किसप्रकार असत्को लांघकर सत्स्वरूपमें पहुँचना होता है, किसप्रकार तमको लांघकर परमज्योतिकी प्राप्ति कीजाती है, किसप्रकार मृत्युके पार होकर अमृतत्व में पहुँचा जाता है, यही उपनिषद् शास्त्रमें वर्णन

किया है। उपनिषद् ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिका उपाय है। सब उपनिषदोंमें इस ही तत्त्वका विचार किया है। संसारबन्धनसे मुक्ति ब्रह्मभावकी प्राप्ति—सच्चिदानन्दस्वरूपताकी प्राप्ति सकल उपनिषदोंमें अनेकों प्रकारसे वर्णन की है।

उपनिषदोंमें कितने ही प्राचीन हैं और कितने ही आधुनिक मालूम होते हैं। सब उपनिषद् एक ही समयमें प्रकट नहीं हुए हैं, यह बात भाषा और भावकी आलोचना करनेसे सहजमें ही समझमें आजाती है। श्रीशङ्कराचार्यजी ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वर और कौषीतकी उपनिषद् पर भाष्य बना गये हैं, इसके सिवाय उन्होंने अपने शारीरक भाष्यमें अनेकों उपनिषदोंमें से उठार कर प्रमाण दिये हैं, अथर्वशीर्ष और नृसिंहतापनी आधु॰ निक प्रतीत होते हैं, तथापि वह बहुत प्राचीन हैं। बहुतसे लोगोंका विचार है, कि-जो उपनिषद् वैदिक समय में प्रचलित नहीं हुए वह उपनिषद् ही नहीं हैं. परन्तु ऐसी बाँधाबांधी नहीं होसकती। कितने ही उपनिषद् अवतार तत्त्वको लेकर रचेगये हैं, गोपालतापनी इस ही श्रेणीका उपनिषद् है। श्री कृष्णके अवतार तत्त्वको लेकर ही यह रचागया है।

गोपालतापनी उपनिषद्में साधारण औपनिषद तत्त्वका ही विचार है। परमात्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण के स्वरूपका कीर्त्तन, संसारसे तरनेके उपायका

वर्णन, ज्ञानप्राप्तिकी प्रणालीका निश्चय, श्रीकृष्ण लीलाके बाहरी आवरणको हटाकर वास्तविक तत्त्व में पहुँचनेके लिये साधनमार्गका प्रदर्शन, और 'रसो वै सः' रूपसे परमात्माको पाकर आनन्दी होनेके उपाय का उपदेश इस गोपालतापनी उपनिषद्में बड़ी ही मनोहरताके साथ वर्णन किया है। गोपालतापनी में ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्गका समन्वय है। ध्यान देकर गोपालतापनीका विचार करने पर शुष्क ज्ञान-वाद और अन्ध भक्तिवादका गोलमाल मिटजाता है तथा सरस ज्ञानमयी भक्तिको ही चित्तसे ग्रहण करनेका आग्रह होता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें जो भगवान् कृष्णने—"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभ-क्तिर्विशिष्यते ॥" कहकर ज्ञानी भक्तको श्रेष्ठ बताया है, गोपालतापनीमें उस ही ज्ञानी भक्तकी ज्ञानमयी भक्तिका वर्णन दमक रहा है। इसलिये गोपालतापनी केवल ज्ञानमार्गीका ही सर्वस्व धन नहीं है, किन्तु भक्तिमार्गीकी भी प्राणसमान प्यारी वस्तु है। गोपालतापनी परब्रह्म श्रीकृष्णकी लीलाओंके परदेको उघाड़कर उनका सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञानी भक्तके सामने प्रकाशित करदेती है। जो श्रीकृष्णलीलाका गूढ़ रहस्य जानना चाहते हों वह गोपालतापनीकी आलोचना करें तो परब्रह्म श्रीकृष्णके स्वरूपका दर्शन पासकेंगे तथा अपनी हृदयकी गांठको खोलकर सकल संशयोंका नाश करते हुए परमानन्दकी प्राप्ति करेंगे। गोपालतापनी उपनिषद्ध छान्दोग्य बृहदार-

ग्रन्थकी समानकोटिका न होनेपर भी प्रामाणिक है, क्योंकि मुक्तिकोपनिषद्में इसका नाम आया है। हमारा विश्वास है कि—प्रामाणिकता और उपादेयताका प्राचीनता और आधुनिकताके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जो सत्य है वह सदा ही सत्य है। प्राचीन वा अर्वाचीन चाहे जिस कालमें प्रकट हो सत्यकी मर्यादा सदा एकसमान है। अनन्त ज्ञानस्वरूप वेदका कोई अंश यदि कुछ अर्वाचीन समय पर भी प्रकाशित हो तो उससे उसका गौरव कम नहीं हो सकता। पुरातन हो चाहे नवीन हो सत्य सत्य ही है। गोपालतापनी उपनिषद्का जो तत्त्व है वह चिर सत्य, चिरपुरातन और सदा नूतन है, इसलिये यह ग्रन्थ अवश्य ही मान्य और शिरोधार्य है, इसके अमूल्यरत्न होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिये मैंने इसका सरल हिन्दी अनुवाद करके प्रकाशित करदिया है, आशा है भगवान् कृष्णके भक्त इसको पढ़कर अवश्य ही प्रकृत कृष्णतत्त्वको हृदयङ्गम करते हुए अनन्य कृष्णभक्त बनकर मनुष्य जन्मकी कृतार्थता प्राप्त करेंगे। श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

निवेदयिता

अनुवादक—रामस्वरूपशर्म्मा,

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

वैदिक-श्रीकृष्ण

अर्थात्

गोपालतापनी उपनिषद्

पूर्वभाग

ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥

ग्रन्थके आरम्भमें श्रोताओंके विघ्नविनाशके लिये श्रीकृष्णको प्रणामरूप मङ्गलाचरण करते हैं, कि— अपने भक्तोंके अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पांच क्लेशोंका नाश करनेवाले, उपनिषद्‌विद्याके द्वारा जाननेमें आनेवाले, सकल जीवोंके हितका उपदेश देनेवाले, प्राणियोंकी सकल

इन्द्रियें और प्राण मन एवं बुद्धिके साक्षी सच्चिदानन्दरूप पापनाशक कृष्णको प्रणाम है ॥ १ ॥

ॐ मुनयो ह वै ब्रह्माणमूचुः, कः परमो देवः, कुतो मृत्युर्बिभेति, कस्य विज्ञानेन निखिलं विज्ञातं भवति, केनेदं विश्वं संसरति इति ॥२॥

तत्त्वोंके मनन करनेका जिनका स्वभाव है ऐसे सनकादि मुनियोंने ब्रह्माजीसे प्रश्न किया, कि–सब से श्रेष्ठ देव कौन है? मृत्यु किससे भय पाता है? किसको जानलेनेसे जगत्के सकल पदार्थों का ज्ञान होजाता है? और यह सब जगत् किससे उत्पन्न होता है? ॥ २ ॥

तदु होवाच ब्राह्मणः श्रीकृष्णो वै परमं दैवतम् ।

ब्रह्माजीने सनकादि ऋषियोंसे कहा, कि–श्रीकृष्ण ही परम देवता हैं, क्योंकि-वह भक्तोंकेपापोंके टुकड़े२ करदेते हैंऔर सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। कृष्ण नाममें 'कृष्'का अर्थ है-सत् चित् और ण का अर्थ है आनंद। अथवा कृष्का अर्थ है–उत्तम और ण का अर्थ है निष्पत्ति, अतः जिससे उत्तम प्राप्ति हो वह सर्वसामञ्जस्यकारी परमात्मा ही कृष्ण कहलाते हैं। अथवा क्–ब्रह्मा ऋ–अनन्त, ष–शिव, ण–धर्म, अर्थात् जो ब्रह्मारूपसे सृष्टि करते हैं, जो अनन्त वा सीमा रहित हैं, जो शिवरूपसे संहार करते हैं और जो सकल धर्ममय हैं वही श्रीकृष्ण हैं। अथवा जो कृष् कृत्स्न वा पूर्ण, ण—आत्मा हैं अर्थात् जो सकल

जीवोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं वह परमात्मा ही श्रीकृष्ण हैं ॥ ३ ॥

गोबिन्दान्मृत्युर्बिभेति ॥ ४ ॥

गो कहिये ज्ञानके द्वारा जिनको जानाजाता है वह गोविन्द कहलाते हैं, उनकी प्राप्ति होने पर अमृतस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति होजाती है, तब मृत्युका कुछ भय नहीं रहता, क्योंकि—मृत्यु उनसे डरता है अर्थात् भयके मारे उनका आज्ञाकारी रहता है फिर वह उनके भक्तोंके ऊपर अपना प्रभाव कैसे चला सकता है ? । श्रुति भी कहती है—"भयाद-स्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" ॥ ४ ॥

गोपीजनवल्लभज्ञानेन तज्ज्ञानं भवति ॥५॥

जो नाम और रूपके द्वारा इस सकल जगत्की रक्षा करती है क्योंकि–अविद्या वा मायाके द्वारा ही जगत् की रक्षा होती है, माया न हो तो जगत् रहही नहीं सकता अथवा जो परब्रह्मके स्वरूपको गुप्त कहिये ढका हुआ रखती है वह प्रकृति वा माया ही गोपी कहलाती है। उस मायासे उत्पन्न हुआ यह जगत् गोपीजन कहलाता है,तिस जगत्के जो स्वामी हैं वह परमात्मा ही गोपीजनवल्लभ कहलाते हैं, उनको जानलेने पर विश्वके सकल पदार्थोंका ज्ञान होजाता है, अथवा जो रक्षा करैं वह पालकशक्तियें ही गोपी कहलाती हैं उनका जो जन अर्थात् समूह,तिस समूह

का ईश्वर-स्वामी—प्रेरक परमात्मा ही गोपीजन वल्लभ है, उसको जानलेने पर विश्वभरका ज्ञान होजाता है श्रुतिं भी कहती है कि-"आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।" (बृहदारण्यक) "सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात् ।" (छान्दोग्य)। बृहदारण्यक उपनिषद्में याज्ञवल्क्यने अपनी पत्नी मैत्रेयीको उपदेश दिया है, कि-आत्माके दर्शन, श्रवण और मननके द्वारा सब ही जाननेमें आजाता है। और छान्दोग्यमें श्वेतकेतुको उसके पिताने उपदेश दिया है, कि-जैसे मृत्तिका का ज्ञान होजाने पर मृत्तिका से उत्पन्न हुए सकल पदार्थोंका ज्ञान होजाता है तैसे ही इस जगत्के कारण परब्रह्मको जानलेने पर सकल जगत्का ज्ञान होजाता है ॥ ५ ॥

स्वाहयेदं संसरतीति ॥ ६ ॥

स्वाहा शब्दसे कहीजानेवाली मायाके द्वारा यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है। आहुतिक्रिया का नाम स्वाहा है "सु सुष्ठु आहूयन्ते देवा अनेनेति स्वाहा देवहविर्दानमन्त्रः" स्वाहासे सिद्ध होनेवाले यज्ञके द्वारा ही यह विश्व उत्पन्न होता है । मायोपाधिक पुरुष अपनेको यज्ञका हविःस्वरूप करके विश्वको उत्पन्न करता है। निरुक्तमें लिखा है, कि-"प्रजापतेः स्वा आत्मीया वागाहेति स्वाहाकाररूपा वाक् प्रजापतिसृष्टिरित्यर्थः ।" प्रजापतिकी अपनी वाक्के

जो कुछ कहा वही अर्थात् प्रजापतिकी सृष्टि ही स्वाहा है। मायाका आश्रय करके पुरुषने इस विश्व को रचा, उन्होंने मानो मायारूप अग्निमें अपनी आहुति दी थी। यज्ञसे धूम मेघ अन्न आदिकी सृष्टि होती है। यह माया ही स्वाहा है। प्रजापतिने सृष्टि के समय "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" एक मैं बहुत होऊँगा, इस वाक्यके अनुसार मायाके अवलम्बन से विश्वकी रचना की, उनका वह वाक्य ही माया-स्वरूप था। इससे सिद्ध हुआ कि-स्वाहा, यज्ञ, माया, वाक् आदिका परस्पर संबन्ध है ॥ ६ ॥

तदु होचुः, कः कृष्णो गोबिन्दश्चेति कोऽसाविति गोपीजनवल्लभः, का स्वाहेति ॥ ७॥

उन सनकादि मुनियोंने ब्रह्माजीसे फिर प्रश्न किया, कि कृष्ण कौन हैं? गोबिन्द कौन हैं? गोपीजनवल्लभ कौन हैं? और स्वाहा कौन है? ॥ ७ ॥

तानुवाच ब्राह्मणः, पापकर्षणो गोभूमिवेदविदितो वेदिता, गोपीजनाविद्याकलाप्रेरकस्तन्माया चेति ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीने उन सनकादि मुनियोंको उत्तर दिया, कि-जो पापको हरने हैं वह कृष्ण हैं, जो गो कहिये भूमि अर्थात् विश्वकी और गो कहिये वेदवाणीकी रक्षा करते हैं अथवा जो विश्वदर्शन और वेदाध्ययनके द्वारा जानेजाते हैं वह गोबिन्द हैं। जो अविद्याकला रूप पालनशक्तियोंके ईश्वर हैं वह गोपी-

जनवल्लभ हैं। उनकी मायाका नाम स्वाहा है ॥ ८ ॥

सकलं परं ब्रह्मैव तत् ॥ ९ ॥

यह सब ऊपर माया और परब्रह्मकी ही बात कही है ॥ ९ ॥

यो ध्यायति रसति भजति सोऽमृतो भवति सोऽमृतो भवति ॥ १० ॥

जो इसप्रकार ध्यान करता है, रसनाके द्वारा उच्चारण करता है अर्थात् जप करता है, और पूजा करता है, वह अवश्य ही मोक्ष पाता है ॥ १० ॥

ते होचुः किं तद्रूपं, किं रसनं, कथं चाहं तद्भजनं तत्सर्वं विविदिषतामाख्याहीति ॥ ११ ॥

सनकादि मुनियोंने फिर प्रश्न किया, कि—उसका वह कौन रूप है, कि—जिसका ध्यान कियाजाय वह जप कौनसा है? और उसका भजन किसप्रकार किया जाय? इन सब बातोंको जाननेके लिये हमें उत्कण्ठा है, इसलिये हमे यह सब विस्तारके साथ सुनाइये॥

तदु होवाच हैरण्यगोपवेशमभ्राभं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम् ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीने उत्तर दिया, कि—वह हैरण्य कहिये ज्ञानमयमूर्त्ति है, वह गोपवेश अर्थात् साधारण पुरुषों को ग्वालरूप दीखताहुआ भी वास्तवमें गोप कहिये जगत्का पालक है वेश (स्वरूप) जिसका ऐसा है,

वह अभ्राभ कहिये साधारण पुरुषोंकी दृष्टिमें मेघ-श्याम होकर भी वास्तवमें अभ्र जो जलको धारण करनेवाला समुद्र उसकी समान गम्भीर और अपार है । तरुण कहिये जरा आदिसे रहित और कल्पद्रुम जो वेद तिसका आश्रित कहिये प्रतिपादन किया हुआ है ॥ १२ ॥

तदिह श्लोका भवन्ति—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् ।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥

उसके ध्यान करने योग्य रूपके विषयमें ज्ञानी भक्तोंने नीचे लिखे प्रकारका रूप वर्णन किया है—

वह निर्मल पुण्डरीक कहिये हृदयकमलके द्वारा नयन कहिये प्राप्त कियाजाता है, क्योंकि—कलुषित हृदयमें ब्रह्मज्ञान भासित नहीं होता, वह मेघाभ है अर्थात् सन्तप्त हृदयमें सच्चिदानन्दस्वरूपसे मेघकी समान शान्ति देता है, वह वैद्युताम्बर है अर्थात् -उस के प्रकाशके लिये और किसी प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है, जैसे बिजली अपनी ज्योतिसे आप प्रकाशित होती है तैसे ही चित्स्वरूप वह भी आप ही प्रकाशित

होजाता है, वह द्विभुज है अर्थात्-हिरण्यगर्भ और विराटस्वरूप अथवा कारणब्रह्म और कार्य ब्रह्म ये दोनों उसकी भुजारूप हैं अर्थात् वही जगत्का समवायी कारण और निमित्त कारण है, वह ज्ञान-मुद्राढ्य है अर्थात् ज्ञानमुद्रा कहिये तत्त्वमसि रूप सच्चिदानन्दैकरसाकार वृत्तिमें आढ्य कहिये प्रकाश मान है। वह वनमाली है (वने मालते प्रकाशते इति वनमाली) अर्थात् वन कहिये ध्यान धारणा आदिके योग्य एकान्त स्थानमें अपने भक्तके समीप प्रकाशित होता है, वह ईश्वर कहिये ब्रह्मादि देव-ताओंका नियन्ता है ॥ ❀ ॥ वह गोपगोपीगवातीत है अर्थात् गोप कहिये जीव, गोपी कहिये माया और गो कहिये वेदवाणी इनके स्वामीरूपसे आश्रित है अर्थात् ये इस कृष्णके ही आश्रयसे ठहरे हुए हैं, वह सुरद्रुमतलाश्रित है अर्थात् वेदमें उसका वर्णन है, वह दिव्यालङ्करणोपेत है अर्थात् वैराग्य मोक्ष आदि छः प्रकारके ऐश्वर्यरूप अलङ्कारसे भूषित है, वह रत्नपङ्कजमध्यग है अर्थात् रत्नकी समान अति-स्वच्छ जो हृदयकमल उसके भीतरके आकाशमें विराजमान है। फिर कैसा है वह कालिन्दी कहिये निर्मल उपासना उसके जलकी कल्लोलें कहिये उस के द्वारा नानाप्रकारकी हृदयकी तरङ्गें उनका सङ्गी मारुत कहिये जो निश्चल प्राणवायु, उससे सेवित है। जो अपने चित्तमें श्रीकृष्णके ऐसे स्वरूपका ध्यान करते हैं वह इस संसारसे मुक्ति पाजाते हैं ॥

बाहरी लीलाओंके साथ मिलाकर देखने पर भक्त लोक देखेंगे, कि-पुण्डरीकनयन मेघकी समान श्यामल, वैद्युताम्बर कहिये बिजलीकी समान पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण चारभुजाओंके साथ जन्म लेनेके अनन्तर द्विभुज होगये थे। वह ज्ञानमुद्रा नामकी मुद्रासे युक्त, वनमालाधारी और ईश्वर थे। वह श्रीदामा आदि गोप और राधिका आदि गोपियें तथा कपिला आदि गौओंसे आवीत कहिये घिरे रहते थे, वह दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत सिंहासन के ऊपर रत्नमय सुवर्णकमल पर विराजते थे, वह कालिन्दीके जलकी तरङ्गोंका स्पर्श किये हुए वायुसे सेवित रहते थे ॥

तस्य पुनः रसनं जलभूमीन्दुसम्पातकामादिकृष्णायेत्येकं पदं, गोबिन्दायेति द्वितीयं, गोपीजनेति तृतीयं, बल्लभायेति तुरीयं, स्वाहेति पञ्चममिति पञ्चपदीं जपन् पञ्चाङ्गं द्यावाभूमी सूर्याचन्द्रमसौ साग्नीतद्रूपतया ब्रह्म सम्पद्यते ब्रह्म सम्पद्यते इति ॥ १३ ॥

उसका जप क्या है ? इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं, कि—जल (ककार), भूमि (लकार), ई, इन्दु (अनुस्वार) इनके सम्पात कहिये योगमें जो कामबीज (क्लीं) हुआ इसको आदिमें लगाकर कृष्णाय यह पहिला पद, गोबिन्दाय यह दूसरा पद, गोपी-

जन यह तीसरा पद, बल्लभाय यह चौथा पद और स्वाहा यह पांचवां पद, इस पञ्चपदोंका जप करने वाला द्युलोक भूलोक, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इस पञ्चाङ्ग ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

तदेषः श्लोकः—क्लीमित्येतदादावादाय कृष्णाय गोविन्दायेति च गोपीजनबल्लभाय बृहद्भान-व्यासकृदुच्चरेत् यो गतिस्तस्यास्ति मंक्षु नान्या गतिः स्यादिति ॥ १४ ॥

क्लीं इस पदको आदिमें लेकर, फिर "कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनबल्लभाय स्वाहा" ऐसा जो एक वार भी उच्चारण करते हैं वह मुक्ति पाते हैं, उनकी अन्यगति नहीं होती है ॥ १४ ॥

भक्तिरस्य भजनं, तदिहामुत्रोपाधिनैराश्येना-मुस्मिन् मनसः कल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्यम् १५

उसका भजन क्या है ? इसका उत्तर कहते हैं, कि—उसकी भक्ति करनेको ही भजन कहते हैं। इस लोकके और परलोकके फलकी कामनाको त्याग कर श्रीकृष्ण परमात्मामें प्रेमके साथ तन्मयताको उनका भजन कहते हैं, इस भजनको ही निष्काम भजन कहते हैं अर्थात् इस लोकके या परलोकके किसी प्रकारके भी सुखकी कामना न करके श्री-कृष्ण भगवान्को आत्मसमर्पण कर देना ही उनका भजन है ॥ १५ ॥

कृष्णं तं विप्रा बहुधा यजन्ति, गोविन्दं सन्तं बहुधा आराधयन्ति, गोपीजनवल्लभः भुवनानि दध्रे ॥ १६ ॥

उन श्रीकृष्णको ब्राह्मणादि सात्विक पुरुष दानयोग आदि अनेकों यज्ञोंके द्वारा यजन करते हैं। गौ भूमि और वेदकी रक्षा करनेवाले गोविन्दकी श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन आदि अनेकों भावोंसे आराधना करते हैं। वह गोपीजनवल्लभ अर्थात् पालनशक्तियोंके स्वामी उन शक्तियोंको प्रेरण करते हुए अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका पालन करते हैं ॥ १६ ॥

स्वाहाश्रितो जगदेतदेजयत्सुरेताः ॥ १७ ॥

उन्होंने सुरेता होकर और स्वाहा कहिये माया का आश्रय लेकर जगत्को चेष्टायुक्त किया अर्थात् विश्वकी सृष्टि करी, गीतामें भगवान्ने स्वयं कहा है-"मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्"। (सुष्ठु शोभनं चिद्रूपः रेतः यस्य सः सुरेताः) उत्तम चिद्रूप जिसका रेत हो वह सुरेता कहलाता है। शिवरूप परमपुरुषकी मायाके आश्रयकी मूर्त्तिके सिवाय और कोई मूर्त्ति नहीं है ॥ १७ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो जन्ये पञ्चरूपो बभूव। कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्चपदो विभाति ॥ १८ ॥

जैसे वायु भुवनमें प्रवेश करके प्रत्येक जन्य व्यक्तिके शरीरमें प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान इन पाँच रूपोंको धारण करता है वैसे ही एक ही श्रीकृष्ण परमात्मा जगत्के हितके लिये पीछे कहे हुए पञ्चपद रूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ १८ ॥

ते होचुरुपासनमेतस्य परमात्मनो गोविन्दस्याखिलधारिणो ब्रूहीति ॥ १९ ॥

उन सनकादि मुनियोंने फिर ब्रह्माजी से कहा, कि—अखिल विश्वके आधाररूप परमात्मा गोविन्दकी उपासना क्या है ? यह हमें सुनाइये ॥

तानुवाच, यत्तस्य पीठं हैरण्याष्टपलाशांबुजं, तदन्तरालिकेऽनलास्त्रयुगं, तदन्तराद्यार्णाखिलबीजं, कृष्णाय नम इति बीजाद्यं, स ब्राह्मणमाधायानङ्गगायत्रीं यथावद् व्यालिख्य भूमण्डलं शूलवेष्टितं कृत्वाङ्गवासुदेवादि रुक्मिण्यादि स्वशक्तीन्द्रादि वासुदेवादि पार्थादि निध्यावीतं यजेत् सन्ध्यासु प्रतिपत्तिभिरुपचारैस्तेनास्याखिलं भवत्यखिलं भवतीति ॥ २० ॥

ब्रह्माजीने सनत्कुमार आदि मुनियोंको उत्तर दिया, कि—एक चौकीका पीठस्थान बनाकर उसके ऊपर सोनेका अष्टदलकमलको स्थापन करे अथवा उस पीठ पर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थसे अष्टदल

कमल लिखै। फिर उस कमलके मध्यमें दो त्रिकोण लिखै, फिर उस षट्कोणके मध्यभागमें कामबीज और कामबीज सहित 'कृष्णाय नमः' इन छः अक्षरों को षट्कोणके सन्धिस्थानमें लिखै। फिर उस कामबीजको "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा" इस अष्टादशाक्षर मन्त्रके द्वारा चारों ओरसे घेर देय। फिर षट्कोणके पूर्व नैर्ऋत वायु कोणमें श्रीं बीज और आग्नेय पश्चिम ईशान कोणमें ह्रीं बीज लिखै। फिर सर्वजनसंमोहक अष्टकेसरोंमें छः छः अक्षरोंसे अड़तालीस अक्षरोंकी कामगायत्री (कामदेवाय,सर्वजनप्रियाय सर्वजनसंमोहनाय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा) लिखै। फिर अष्टदल कमलके ऊपरके भागको वलयाकार मातृकावर्णसे वेष्टित करै। फिर भूमण्डलको शूलवेष्टित अर्थात् चौकोण भूगृह करके अष्टवज्रयुक्त करै और इस यन्त्रको धारण करै। जिस समय पूजाके लिये यंत्र बनावै उस समय ऊपर लिखे अनुसार बनाकर कर्णिकाके ऊपर मण्डूक आदि पृथिवी पर्यन्तकी पूजा करै। फिर अग्नि आदि पीठ-पाद पर धर्म आदि चारोंकी पूजा करै तदनंतर कर्णिका में अनन्त और कमलके अन्तमें प्रणव तथा सकल वर्णोंकी क्रमसे पूजा करै। तदनन्तर सत्त्व,रज,तम इन तीन गुणोंकी और आत्मा, ज्ञानात्मा, परमात्मा इनकी पूजा करै। फिर कमलके अष्टदल और कर्णिका में विमला, उत्कर्षिणी ज्ञानक्रिया, योगा,

प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा इन शक्तियोंकी पूजा करै। फिर "ॐ नमो विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः।" इस पीठ मंत्रको कमलके ऊपर स्थापित करके पीठकी पूजा करै, फिर देवका आवाहन करता हुआ पाद्य अर्घ धूप दीप नैवेद्य समर्पण करै। तदनन्तर आवरण पूजा करै। प्रथम अङ्ग-षट्कोणके आग्नेय, नैर्ऋत्य वायव्य और ईशान चारों कोणोंमें हृदय, शिर, शिखा और कवच इन चारकी, अग्र भागमें नेत्रकी और पूर्वादि दिशाओंमें अस्त्रोंकी इसप्रकार अङ्गोंकी पूजा करै। दूसरे आवरणकी पूजा पूर्व पश्चिम दक्षिण और उत्तरके दलमें क्रमसे वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धकी पूजा करै। फिर आग्नेय आदि चारों कोणोंमें क्रमसे शान्ति, श्री, सरस्वती और रति की पूजा करै। तीसरे आवरणकी पूजा-पद्मके आठों दलोंमें पूर्वादि क्रमसे कृष्णकी शक्तिस्वरूपा रुक्मिणी सत्यभामा, जाम्बवती, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा और सुशीलाकी पूजा करै। चौथे आवरण की पूजा-पूर्वदिशामें पीतवर्ण वासुदेवकी, अग्नि-कोणमें श्यामलवर्ण देवकी की, दक्षिणमें कपूरकी समान गौरवर्ण नन्दकी, नैर्ऋत्यकोणमें कुंकुमगौराङ्गी यशोदाकी, पश्चिममें शङ्ख चन्द्रमा वा कुन्दकी समान गौरवर्ण बलदेवकी, वायुकोणमें कलापवर्ण श्यामा सुभद्राकी, उत्तरमें गोपोंकी और ईशानकोणमें गो-पियोंकी क्रमसे पूजा करै। पांचवें आवरणकी पूजा-

अर्जुन, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, सात्यकि गरुड, नारद और पर्वतकी पूजा करै। षष्ठ आवरण की पूजा-पूर्वमें इन्द्रनिधि, अग्निकोणमें नीलनिधि, दक्षिणमें कुन्द, नैर्ऋतकोणमें मकर, पश्चिममें आनन्द, वायुकोणमें कच्छप, उत्तरमें शङ्खनिधि और ईशान-कोणमें पद्मनिधिकी पूजा करै। सातवें आवरणकी पूजा-पूर्वदलमें पीतवर्ण इन्द्रकी, अग्निकोणमें लाल-रङ्गके अग्निकी, दक्षिणमें नीलकमलके समान यमकी, नैर्ऋतमें कृष्णवर्ण राक्षसपतिकी, पश्चिममें श्वेतवर्ण वरुणकी, वायुकोणमें धूम्रवर्ण वायुकी, उत्तरमें नील-वर्ण कुबेरकी और ईशानकोणमें श्वेतवर्ण ईशान को पूजा करै। अष्टम आवरणकी पूजा-पूर्व और ईशानके मध्यमें गोरोचनावर्ण ब्रह्माकी, नैर्ऋत और पश्चिमके मध्यमें श्वेतवर्ण शेषनागकी, पूर्वादिदलोंमें क्रमसे पीले वज्रकी, श्वेत शक्तिकी, नीले दण्डकी, श्वेत शङ्खकी विद्युत्वर्ण पाशकी, लाल ध्वजाकी, नीली गदा और श्वेत त्रिशूलकी पूजा करै। इन सब आवरणोंसे वेष्टित परब्रह्म श्रीकृष्णकी तीनों सन्ध्या-ओंमें ध्यानपूर्वक षोडशोपचार आदिसे पूजा करै इस पूजाके द्वारा उपासक को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥

तदिह श्लोका भवन्ति-

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन्बहुधा यो विभाति। तं पीठस्थं येऽनु भजन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ २१ ॥

इस विषयमें यह श्लोक सुने जाते हैं—एक कहिये सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदशून्य श्रीकृष्ण के सब ही वशीभूत हैं, वह सर्वग हैं अर्थात् देश, काल और वस्तुकी अवधिमें बँधेहुए नहीं हैं, स्तुतिके योग्य हैं, एक होकर भी जगत्की रक्षाके लिये अनेकों रूपोंको धारण करते हैं, जो पुरुष उनको पीठमें स्थित हुए लक्ष्य करके उनकी पूजा करते हैं वे नित्यानन्द सुखको भोगते हैं, औरोंको यह सुखभोग नहीं मिलता ॥ २१ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तं पीठगं येऽनुभजन्ति धीरा-स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ २२ ॥

नित्योंमें नित्य, चेतनोंमें चेतन, जो एक होकर भी अनेकों की कामनायें पूरी करता है, उसको पीठ में स्थित लक्ष्य करके जो धीर पुरुष पूजा करते हैं, वे नित्यानन्दरूप सिद्धिको पाते हैं, औरोंको यह सिद्धि नहीं मिलती ॥ २२ ॥

एतद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्तास्तं संयजन्ति न कामान्। तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात्प्रकाश-येदात्मपदं तदैव ॥ २३ ॥

जो पुरुष सर्वदा उद्योगके साथ विष्णुके इस परम पदकी आराधना करते हैं और विषयवासनाकी आ-राधना नहीं करते हैं, उनके प्रयत्नके कारण श्रीकृष्ण

परमात्मा गोपवेशसे उनके समीप आत्मपद कहिये अपने स्वरूपको प्रकाशित करते हैं ॥ २३ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यां तस्मै गोपायति स्म कृष्णः । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुः शरणं व्रजेत् ॥ २४ ॥

जो सृष्टिकालमें पहिले ब्रह्माजीको रचते हैं और उनके लिये वेदकी रक्षा करते हैं अथवा उनको वेद का उपदेश देते हैं उन स्वप्रकाश ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण का मोक्षकी अभिलाषासे आश्रय लेय ॥ २४ ॥

ओङ्कारेणान्तरितं ये जपन्ति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुम् । तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै ॥ २५ ॥

जो पुरुष ॐकारमें लपेटेहुए गोविन्दके पञ्चपद मंत्रका जप करते हैं, उनको गोविन्द अपने रूपका दर्शन देते हैं, अतः मुमुक्षु पुरुष नित्य शान्ति पाने के लिये गोविन्दमन्त्रका वारम्वार जप करै । मंत्र यह है-' ॐ कृष्णाय ॐ गोविन्दाय ॐ गोपीजनवल्लभाय ॐ स्वाहा ।" ॥ २५ ॥

एतस्मादन्ये पञ्चपदादभूवन् गोविन्दस्य मनवो मानवानाम् । दशार्णाद्यास्तेऽपि सङ्कर्षणाद्यैरभ्यस्यन्ते भूतिकामैर्यथावत् ॥ २६ ॥

इस पञ्चपद मंत्रके सिवाय दशाक्षर आदि अन्य

गोपालमंत्र सनकादि ऋषियोंसे स्फुरित हुए थे, ऐश्वर्यको चाहनेवाले इन्द्रादि देवता इसका यथावत् अभ्यास करते हैं ॥ २६ ॥

यदेतस्य स्वरूपार्थं वाचा वेदयन्ति । ते पप्रच्छुः तदुहोवाच, ब्रह्मसवनं चरतो मे ध्यायतः स्तुतः परमेश्वरः परार्धान्ते सोऽबुध्यत गोपवेशोमे पुरुष पुरस्तादाविर्बभूव ॥ २७ ॥

क्योंकि-ये सब मन्त्र श्रीकृष्णके स्वरूपका वाक्य के द्वारा बोध कराते हैं, इस कारण उन सनकादि ऋषियोंने इनके विषयमें प्रश्न किया तब प्रजापतिने उनसे कहा, कि—मैंने ब्रह्माके अर्थात् अपने परार्ध-कालके अन्ततक श्रीकृष्णकी ध्यानपूर्वक स्तुतिकी थी, तब ब्राह्मो रात्रिके अन्तमें वह गोपवेश पुरुष मेरे सन्मुख तद्रूपसे ही प्रकट हुए थे ॥ २७ ॥

ततः प्रणतो मयाऽनुकूलेन हृदा मह्यमष्टादशार्णं स्वरूपं सृष्टये दत्वान्तर्हितः पुनः सिसृक्षतो मे प्रादुरभूवन् ।तेष्वक्षरेषु विभज्य भविष्यज्जगद्रूपं प्राकाशयस्, तदिह ककारात् आपो लकारात् पृथवी ईतोऽग्निः विन्दोरिन्दुस्तत्सम्पातात्तदर्कं इति क्लींङ्कारादसृजम् । कृष्णादाकाशं खाद्वायुरि-त्युत्तरात्सुरभिविद्याः प्रादुरकार्षं, तदुत्तरात स्त्रीपुं-सादिभेदं सकलमिदं सकलमिति ॥ २८ ॥

तदनन्तर मैंने उनका ही ध्यान करते हुए प्रणाम किया, वह सृष्टिके लिये मुझे अपने स्वरूप अष्टादश अक्षर देकर अन्तर्धान होगये । वह अष्टादश अक्षर ये हैं-"क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ।" तदनन्तर मैंने सृष्टिके लिये इच्छा की तो वह अष्टादश अक्षर होनहार जगत्का प्रकाश करनेके लिये प्रकट हुए । उन अठारह अक्षरोंमें भविष्यत् जगत्को मानसिक दृष्टिसे देखकर मैं सृष्टि रचना करनेमें प्रवृत्त होगया । ककारसे जल, लकारसे पृथिवी, ईकारसे अग्नि, अनुस्वारसे चन्द्रमा अर्थात् इनके समुदायरूप क्लीं बीजसे पृथिवी जल अग्नि और चन्द्रमाको रचा, तदनन्तर कृष्णाय इस पदसे आकाशको और आकाशसे गोविन्दाय पदके द्वारा वायुको रचा । तदनन्तर गोपीजनवल्लभाय पदसे सुरभि अर्थात् कामधेनु और चौदह विद्याओं को रचा । तदनन्तर पिछले पद स्वाहासे स्त्री, पुरुष क्लीब और स्थावर जङ्गमके समूहको प्रकाशित किया ॥ २८ ॥

एतस्यैव यजनेन चन्द्रध्वजो गतमोहमात्मानं वेदयति इत्योङ्कारान्तरालिकं मनुमावर्त्तयेत्, सङ्गरहितोऽभ्यानयत् ॥ २९ ॥

इस अठारह अक्षरवाले मन्त्रके यजनसे चन्द्रध्वजका मोह दूर होकर उनको आत्मस्वरूपका ज्ञान हुआ इसलिये मनुष्योंको उचित है कि-ॐकारका

पुट देकर निष्काम चित्तसे इस अष्टादशाक्षर मन्त्र का जप करें ॥ २९ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततं तस्मादेनं नित्यमभ्यसेन्नित्यमभ्यसेदिति ॥ ३० ॥

ज्ञानी पुरुष विष्णुके प्रसिद्ध पदको प्रकाशात्मक स्वरूपमें ही देखते हैं, यह पद चक्षुकी समान प्रकाशक और व्यापक है, इसलिये इस अष्टादशाक्षर मन्त्रका नित्य अभ्यास करै ॥ ३० ॥

तदाहुरेके यस्य प्रथमपदाद्भूमिः, द्वितीयपदाज्जलं, तृतीयपदात्तेजः, चतुर्थपद्वायुः, चरमपदाद्व्योम इति वैष्णवं पञ्चव्याहृतिमयं मंत्रं कृष्णावभासं कैवल्यसृत्यै सततमावर्त्तयेदिति ॥ ३१ ॥

इस मन्त्रके प्रथम पदसे भूमि, द्वितीय पदसे जल, तृतीय पदसे तेज, चतुर्थ पदसे वायु और अन्तिम पदसे आकाशकी सृष्टि हुई है, अतः मुक्ति मार्गकी प्राप्तिके लिये कृष्णके प्रकाशक इस वैष्णव पञ्चव्याहृतिमय मन्त्रका जप करै ॥ ३१ ॥

तदत्र गाथाः—

यस्य पूर्वपदाद् भूमिर्द्वितीयात्सलिलोद्भवः ।
तृतीयात्तेज उद्भूतं चतुर्थाद्गन्धवाहनः ॥ ३२ ॥
पञ्चमादम्बरोत्पत्तिस्तथैवैनं समभ्यसेत् ।
चन्द्रध्वजोऽगमद्विष्णोः परमं पदमव्ययम् ॥ ३३ ॥

जिसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम पदसे क्रमसे भूमि, जल तेज, वायु और आकाश उत्पन्न हुए हैं और जिसकी साधनासे चन्द्रध्वजको विष्णुके अविनाशी पदकी प्राप्ति हुई, उसका नित्य जप करै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

ततो विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादि-
निरस्तसङ्गम् । यत्तत्पदं पञ्चपदं तदेव स वासु-
देवो न यतोऽन्यदस्ति ॥ ३४ ॥

विशुद्ध, निर्मल, विशोक, लोभ आदि सकलसङ्ग रहित जो पद है वही पञ्च पद है, वही वासुदेवका स्वरूप है, जिन वासुदेवके सिवाय इस जगत्‌में और कुछ है ही नहीं ॥ ३४ ॥

तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं पञ्चपदं
वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणो-
ऽहं परमया स्तुत्या तोषयामि ॥ ३५ ॥

वृन्दावनमें कल्पवृक्षके तले विराजमान, सजातीय-विजातीय स्वगतभेदशून्य (अद्वितीय) पञ्चपदस्वरूप सच्चिदानन्दविग्रहको मैं देवताओं सहित परम स्तुतिके द्वारा सन्तुष्ट करता हूँ ॥ ३५ ॥

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ३६

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।

कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः३७

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।

नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥३८॥

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।

रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥३९॥

कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ।

वृषभध्वजवंद्याय पार्थसारथये नमः ॥ ४० ॥

वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने ।

कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे॥४१॥

वल्लवीवदनाम्भोजमालिने नृत्यशालिने ।

नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः४२॥

पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्त्तासुरारिणे ॥ ४३॥

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।

अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥४४॥

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।

आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥४५॥

श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।

संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥ ४६ ॥

केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।

गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥४७॥

हे भगवन्! तुम ही विश्वरूप हो, तुम ही विश्व का पालन और प्रलय करनेवाले हो, तुम ही विश्वेश्वर हो और तुम ही विश्व हो, हे ज्ञानगम्य गोबिन्द आपको नमस्कार है, "गवा ज्ञानेन वेद्यः गोबिन्दः" जो ज्ञानसे प्राप्त हो वह गोबिन्द ही ब्रह्म है वह कार्य-दशामें विश्वके सकल पदार्थरूप और कारण दशामें एक है, वह ही मायाके आश्रयसे जगत्की रचना, पालन और प्रलय करता है, इसकारण वह विश्व भी है और विश्वेश्वर भी है, अभेदात्मक ज्ञान होने से ही सत्यकी प्राप्ति होसकती है ॥ ३६ ॥ हे भगवन्! आप विज्ञानरूप हैं, आप परम आनन्दमय हैं आप भक्तोंके पाप और क्लेशोंको खेंचकर फेंक देते हैं इसकारण आप कृष्ण कहलाते हो, गोपी जो प्रकृति वा माया आपके (ब्रह्मके) अधीन रहकर ही जगत् का उपादान कारण है इसकारण आप गोपीनाथ हैं ऐसे ज्ञानगम्य आप गोबिन्दको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् आप कमलनेत्र है अर्थात् कमल पद्मको कहते हैं, विशुद्ध सत्त्वगुणात्मिका माया भी पद्म कहलाती है, क्योंकि-भगवान्की चार भुजाओंमें जो शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हैं, उनमें पद्म सत्त्व है, गदा प्राण सत्त्व है, शङ्ख जलतत्त्व है, चक्र तेजस्तत्त्व है। इस लिये यहां पद्म शब्दसे सत्त्वगुणात्मिका मायाको लेते हैं। विशुद्ध सत्त्वगुणात्मिका माया निर्मल है, उस सत्त्वगुणमयी मायामें भगवान्की दिव्य ज्योति भासित होनेमें कुछ बाधा नहीं होती है, जब प्रकृति

रज तमसे युक्त होती है तब ही बाधा होती है। कमलनेत्र शब्दका साधारण अर्थ यह है, कि—आपके नेत्र कमलकी समान निर्मल हैं, यदि पदके गूढ़ार्थ को टटोलाजाय तो यह होता है कि—साधारणतः जैसे नेत्रोंके विना जीव देख नहीं सकते तैसे ही मायाके आश्रयके विना यह जग प्रपञ्च नहीं होता अथवा ब्रह्म इस जगत्की सृष्टि नहीं करता, परन्तु वह सत्त्वगुण विशिष्ट होनेके कारण कमलकी समान निर्मल है। हे भगवन्! आप कमलमाली हैं। माला शब्दका अर्थ है आदिमाया, शास्त्र कहता है, कि—"कण्ठस्तु निर्गुणं प्रोक्तं माल्यते आद्ययाऽजया। माला निगद्यते ब्रह्मंस्तव पुत्रैस्तु मानसैः॥" कण्ठ-नाम हैं निर्गुण ब्रह्मका, उसको प्रपञ्चरूप आभूषण से सजाती हैं, इसलिये आपके मानस पुत्र सनक सनन्दन आदि आद्या मायाको माला नामसे कहते हैं। इसलिये सत्त्वगुणमयी माया जिनकी मालारूप है वह ही कमलमाली कहलाते हैं। माया न रहने पर ही निर्गुण ब्रह्म है। लोकमें जैसे कोई माला पहर लेय तो वह दर्शनीय होजाता है, तिसीप्रकार मायाका आश्रय करने पर ही वह सगुण होकर भक्तों की मनोरञ्जन करते हैं, मायाका आश्रय किये विना उनकी प्राप्ति कोई नहीं करसकता। हे भगवन्! आपकी नाभिमें कमल कहिये मायामय विश्वप्रपञ्च है। जो षट्चक्रके गूढ़तत्त्वको जानते हैं वह समझ

सकते हैं, कि-नाभिकमलमें सृष्टि, संहार और पालन की शक्ति है। ऐसे हे कमला नामवाली मायाके पति भगवन् आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! आपका मस्तक मोरपंखसे सुशोभित है अर्थात् जैसे किरीटधारी राजाधिराज सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है तैसे ही तुम भी कूटस्थ श्रेष्ठ हो, तुम्हारी मेधा (ज्ञान) कभी कुंठित नहीं होती और तुम रमामानस-हंस हो अर्थात् जैसे हंस मानसरोवरमें रमण करता है तैसे ही आप मूला प्रकृति रमामें रमण करते हो, ऐसे हे ज्ञानगम्य गोविन्द आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे भगवन्! आपने कंस, केशी, चाणूर आदि असुरोंका नाश किया है। कंस शब्दका अर्थ हैं—आत्मतत्त्वविरोधी महामोह, विषयवासना ही आत्मज्ञानकी विरोधिनी हैं। कंस और उसके साथी इन विषयवासनाओंकी साक्षात् मूर्त्तिरूप थे। साधारण रूपसे देखाजाय तो भी कंसने अपने संबन्धियों को वंचित करके राज्यको भोगा था "कामयते पित्रादिबन्धुवर्गान् अभिभूय पापात्मकं राज्यविषयादि-भोगं इति कंसः।" सो आपने ऐसे कंसादिका ध्वंस किया था, इससे प्रतीत होता है कि—आप आत्मज्ञानके द्वारा विषयवासनाओंका नाश किया करते हैं। हे भगवन्! आप वृषभध्वज महादेवके भी पूज्य हैं और आप पार्थ (अर्जुन) के सारथी हैं अर्थात्—पार्थ जीवात्मा है, रथ देह है, कृष्ण परमात्मा हैं। युद्ध आदि सकल काम पार्थ ही करता

है, कृष्णकी सत्तासे केवल रथ चलता है, वह करते कुछ नहीं हैं। इस शरीरमें जीवात्मा ही काम करता है, परमात्मा साक्षिस्वरूप है "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते"। इसकारण आप पार्थके सारथि कहिये देहमें साक्षीरूपसे रहनेवाले स्वयं निष्क्रिय हैं ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! आप वेणुवादनतत्पर हैं। वेणुवादनका आध्यात्मिक अर्थ है ॐकारध्वनि। भगवान् प्रणव-रूप हैं। प्रणवकी ध्वनिसे साधकका मन खिच जाता है, इसीलिये गोकुलमें भी श्रीकृष्णकी वंशीकी ध्वनि से गोपियें खिंची चलीगयी थीं। प्रणवका नाद हृदय-ङ्गम होने पर जैसे संसारकी सकल वस्तुएं तुच्छ प्रतीत होने लगती हैं और उनमेंसे एक भी भगवत्के समीप पहुँचनेमें बाधा नहीं डाल सकती इसीप्रकार वंशीकी ध्वनिको सुनने पर भी ब्रजकी गोपियें कृष्ण के पास बिना गये नहीं रहसकी थीं और उनको कोई नहीं रोकसका था तथा वंशीकी ध्वनिके सामने उनको पति, पुत्र, पुत्री आदि अतितुच्छ मालूम होते थे (वंशीवादनका अर्थ वेद या वेदस्वरूप ॐकारके गानके अतिरिक्त और कुछ नहीं है) छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा है, कि–"ओमित्येत-दक्षरमुद्गीथमुपासीत" अर्थात् ओङ्कार और ओङ्कार के गानमें कुछ भेद नहीं है. इस ओङ्कारके गान अर्थात् उद्गीथको परम ब्रह्मस्वरूप मानकर उपा-सना करे। ब्रह्मसंहितामें लिखा है, कि- 'शब्दब्रह्ममयं

धेणं वादयन्तं मुखाम्बुजम् । कृष्णवेणुनिनादस्य त्रयीमूर्तिमयी गतिः ॥" हे भगवन्! आप अघमर्दी अर्थात् अघासुरके नाशक हैं। जो वैदिक सन्ध्या करना जानते हैं, उनको मालूम है, कि-अघमर्षण आचमन, मार्जन, प्राणायाम, गायत्रीजप आदिकी समान सध्याका एक अङ्ग है। अघ शब्दका अर्थ है पाप, श्रीकृष्णने अघासुरको मारा था अर्थात् पाप का नाश किया था। जन्म जन्मान्तरके पापको अघ कहते हैं। अघमर्षणसे चित्त निर्मल होता है, ब्रह्म-चारी अघासुरका वध करके पापरहित हो विशुद्धता को पाता है। हे भगवन्! आप गोपाल हैं अर्थात् गो कहिये वेद वाणीकी रक्षा करते हैं, वेद वा प्रणव की सहायताके विना अघमर्षण नहीं होता, इसलिये भगवान्ने गोपाल वेशसे अघासुरका नाश किया था हे भगवन्! आप कालिन्दीके तटपर जल पीने के लिये प्यासे रहते हैं। कालिन्दी नाम है यमुनाका भक्तके हृदयके उच्छ्वासको ही यमुनाका जल कहते हैं। यमुनाका दूसरा अर्थ है-पिङ्गला नाड़ी, पिङ्गला नाड़ीके द्वारा प्राणायाम सिद्ध होता है, वह प्राणा-याम ही भगवान्की उत्तम उपासना है। हे भगवन् आपके कानोंमें कुण्डल हिलते रहते हैं, इसका तात्पर्य यह है, कि—ब्रह्म सगुण है या निर्गुण इस बातका निश्चय न कर सकनेके कारण श्रुति दोलाय-मान है अर्थात् सन्देहमें पड़ी हुई है। इन कुण्डलों का आकार मकरके समान होता है अर्थात् रसना

वा जिह्वाहीन जन्तुकी समान होता है, ये कुण्डल कानमें वा श्रुतिमें दोलायमान रहते हैं। श्रुतिका अर्थ कान भी है और वेद भी है। जैसे वेद ब्रह्म सगुण है या निर्गुण है, इस बातका निर्णय न कर सकनेके कारण दोलायमान रहते हैं,ऐसे ही कुण्डलों वाले कान भी दोलायमान रहते हैं। जैसे मकर के जीभ नहीं होती है, तैसे ही श्रुति भी जिव्हा-रहित होनेके कारण स्वयं ब्रह्मरसका स्वाद नहीं ले-सकती।कोई निर्गुण और सगुणको तथा कोई सांख्य और योगको दो कुण्डल कहते हैं। ऐसे कुण्डलधारी हे भगवन्! आपको प्रणाम है॥४१॥ गोपियोंके मुख-रूप कमल ही आपकी माला है अर्थात् माया ही आपकी माला कहिये प्रकाशक है। हे भगवन्! आप सदा नृत्य करनेके लिये उत्कण्ठित रहते हैं अर्थात् मायाका आश्रय लेकर भगवान् विश्वप्रपञ्चको रचते हैं, उस समय उनको नर्त्तक कहा जाता है यह विश्व उनके नृत्यका स्थान है और वह इसके नर्त्तक हैं। वह माया रूप मालाको कण्ठमें धारण करके अनेकों प्रकारके नृत्यसे जीवको मायामें बांध देते हैं इसलिये यहाँ नृत्य शब्दसे भगवान्‌की संसार क्रीड़ा लेनी चाहिये, ऐसे संसार क्रीड़ा करनेवाले भक्तोंके रक्षक कृष्णको प्रणाम है॥ ४२॥ हे भगवन्! आप पापोंका नाश करनेवाले हैं, आप गोवर्धनधारी हैं अर्थात् जहां गो कहिये वेद वाणीकी वृद्धि होती है, जिस स्थान पर प्रणवकी पवित्र ध्वनि उच्चारण की

जाती है उस स्थानके ऊपर कोई विपत्ति बाधा नहीं देसकती, इसी कारण इन्द्र बड़ी भारी चेष्टा करने पर भी गोवर्धनका आश्रय लेनेवाले गोप गोपियोंको नष्ट नहीं कर सका था तथा जब जीव सांसारिक विपत्तियोंसे रक्षा पाना चाहते हैं, उस समय एकमात्र प्रणव ही उनको अवलम्ब देता है, इसीलिये श्रीकृष्ण नेगोप गोपियोंको उनकी विपत्तिके समय गोवर्धन के भीतर प्रवेश करनेको वा गोवर्धनका आश्रय लेने को कहा था। हे भगवन्! आपने पूतनाका नाश किया था, पूतनाका अर्थ है मुखमें दूधभरे विषके घड़ेकी समान कपटभरी प्रेयोमूर्त्ति। भागवतमें पूतनाके वर्णनके स्थलमें लिखा है, कि—पूतनाके स्तन म्यानमें बन्द तलवारकी समान तीक्ष्ण थे, परन्तु उसका बाहरी व्यवहार माताकी समान प्रेमभरा था पूतना शब्दका अर्थ है-पवित्र, परन्तु यह पवित्रता बाहरकी है भीतरकी नहीं इसलिये पूतनाकी आकृति भी उत्तम स्त्रियोंकी समान थी। बाहरी पवित्रता और भीतरी अपवित्रता ही पूतना है। "तां तीक्ष्ण चित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोषपरिच्छदासिवत्। वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम्॥" पूतना बकासुरकी बहिन है। बक शब्दका अर्थ है-कुटिलता वा कपटाचरण। भाई और बहिनका स्वभाव एकसा ही है। पूतना कपटाचरणकी मूर्त्ति है। रामायणकी सूपनखा और भागवतकी पूतना एक ही पदार्थ है। धर्ममार्गमें जानेके

लिये पहिला मार्ग कपटाचरणका नाश है, इसलिये कृष्णलीला और रामलीलामें पूतना और सूपनखा का वध पहिले ही कियागया है। हे भगवन् ! आप ने तृणावर्त्त असुरका नाश किया है। तृणावर्त्त शब्द का अर्थ है चक्रवात वा वायुकी गांठ जिसमें बहुत से तृण घूमते फिरते हैं। बाहरी जगत्में जैसा तृणावर्त्त है ऐसा ही तृणावर्त्त अन्तर्जगत्में भी है। जैसे बाहरी जगत्में वायुके विचलित होनेसे तृणावर्त्त उत्पन्न होजाता है तैसे ही अन्तर्जगत्में इन्द्रिय आदिके विचलित होने पर तृणावर्त्त उत्पन्न होजाता है। इन्द्रिय संयम विना किये कोई भी शक्ति प्राप्त नहीं होसकती, इन इन्द्रियोंको संयत करनेसे ही चित्तको शान्ति प्राप्त होती है, इसलिये ही श्रीकृष्ण ने तृणावर्त्तका नाश किया था। युक्ताहारविहार करनेवाले मनुष्यका योग दुःखनाशक होता है। प्रजापतिने देवता, मनुष्य और असुरोंको "दाम्यत, दत्त, दयध्वम्" यह जो उपदेश दिया है, तृणावर्त्तका वध भी यही है। काम क्रोध, लोभ ही नरकका द्वार हैं। तृणावर्त्त वधका अर्थ कामादि छः शत्रुओंका दमन, ऐसे शक्तिशाली हे भगवन्! आपको प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! आप निष्कल अर्थात् ममताशून्य हैं, आपसे सकल मोहका नाश होता है, तुम विशुद्ध (पापरहित) हो, तुम अशुद्ध कहिये पापात्माओंके वैरी हो, ऐसे अद्वितीय और महान् श्रीकृष्णको प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे परमानन्द ! हे परमे-

श्वर ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये, मैं आधिव्याधिरूप भुजङ्ग अर्थात् भीतरी और बाहरी व्यथारूप सर्पका डसा हुआ हूँ, आप मेरा उद्धार करिये॥४५॥ हे श्रीकृष्ण! हे रुक्मिणी कहिये जगत्कर्त्री मूल प्रकृति के स्वामी ! हे गोपी जनमनोहर ! हे जगद्गुरो ! मैं संसारसागरमें डूबा जारहा हूँ आप मेरी रक्षा करिये ॥ ४६ ॥ हे केशव! 'को ब्रह्मा,ईशः रुद्रः तौ आत्मनि स्वरूपे नयति प्रलये उपाधिरूपमूर्त्तित्रयं त्यक्त्वा केवलं परमात्मस्वरूपेणैव तिष्ठते इति केशवः।" जो ब्रह्मा और रुद्रको स्वरूपमें लाता है अर्थात् प्रलय कालमें तीनो मूर्त्तियोंको छोड़कर एकमात्र स्वरूपमें स्थित होता है वह केशव है, हे क्लेशनाशन ! हे नारायण ! "नारा जलं अयनं यस्य" जो प्रलयकालमें क्षीरसमुद्रमें स्थिति करते है अथवा "नारस्य मुक्तेर्वा अयनं प्राप्तिर्यस्मात्" जिनसे मुक्ति प्राप्त होती है, अथवा नराणां समूहो नारं तत्र स्थितिर्यस्य" नरसमूहमात्रमें जिनकी स्थिति है वह नारायण कहे जाते है। हे जनार्दन!"जननाम्नोऽसुरानर्दयति इति जनार्दनः" जो जन नामवाले असुरोंका वध करैं, अथवा जनैर्लोकैरर्च्यते याच्यते पुरुषार्थानसौ जनार्दनः।" जिनसे मनुष्य पुरुषार्थकी याचना करते हैं वह अथवा "जनं जन्म अर्दयति हन्ति इति जनार्दनो भक्तमुक्तिप्रदः"जो जन्मरणका नाश करके मुक्ति देते हैं वह जनार्दन हैं। हे गोविन्द ! हे परमानन्द ! हे माधव ! आपको प्रणाम है मेरा उद्धार करिये ॥४७॥

अथैनं स्तुतिभिराराधयामि यथा यूयं तथा पञ्चपदं जपन्तः श्रीकृष्णं ध्यायन्तः संसृतिं तरिष्यथेति होवाच हैरण्यः ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजीने कहा, कि—मैं जैसी स्तुतियोंके द्वारा भगवान्की आराधना करता हूँ, तुम भी तैसे ही श्रीकृष्ण भगवान् पञ्चपद मंत्रका जप करो और पीछे कहे हुए ध्यानके द्वारा श्रीकृष्णका ध्यान करो तो संसार तर जाओगे ॥ ४८ ॥

अमुं पञ्चपदं मन्त्रमावर्त्तयेत् यः स यात्यनायासतः केवलं तत्पदं तत्। अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ॥ ४९॥

जो इस वासुदेवस्वरूप पञ्चपद मंत्रका जप करते हैं वह सहजमें ही वासुदेव नामके परमपदको पाजाते है, वह अपने पाये हुए स्थानसे नहीं गिरते हैं, मनसे आगे शीघ्रताके साथ जानेवाली चक्षु आदि इन्द्रियें उसको नहीं पाती हैं, क्योंकि—वह उनसे भी आगे जाता है ॥ ४९ ॥

तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसयेत्तं यजेत्तं भजेदिति ॐ तत्सदिति ॥ ५० ॥

इसलिये कृष्ण ही परमदेवता हैं, उनका ही ध्यान करै, उनका ही रस लेय, उनका ही पूजन करै और उनका ही भजन करै, वह ही ॐ—तत्—सत् इन तीनों शब्दोंसे कहेजाते हैं ॥ ५० ॥

इति गोपालतापनी उपनिषद्का पूर्वभाग समाप्त.

* श्रीहरिः *

गोपालतापनी

उत्तर-भाग

एकदा हि व्रजस्त्रियः सकामाः शर्वरीमुषित्वा सर्वेश्वरं गोपालं कृष्णमूचिरे, उवाच ताः कृष्णः १

एक समय मनमें कुछ कामना रखनेवाली व्रजाङ्गनाओंने कृष्णके समीप रात्रिमें निवास करके सर्वेश्वर गोपालसे कामनाकी सिद्धिके लिये आगे लिखे अनुसार कहा, श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भी उनको आगे कही रीतिसे उत्तर दिया ॥ १ ॥

अमुकस्मै ब्राह्मणाय भैक्ष्यं दातव्यं भवति दुर्वासस इति ॥ २ ॥

व्रजाङ्गनाओंने प्रश्न किया कि कैसे ब्राह्मणको भिक्षा देना उचित है ? कि-जिसके आशीर्वादसे हमारी कामना सिद्ध हों ?। श्रीकृष्णने उत्तर दिया कि—दुर्वासा मुनिको भिक्षा देनी चाहिये ॥ २ ॥

कथं यास्यामो तीर्त्वा जलं यमुनायाः यतः श्रेयो भवति ॥ ३ ॥

गोपियोंने कहा, कि—हम किसप्रकार यमुनाके जल

के पार होकर यमुनाके पार मुनिके पास जायँ ? । कि—जिससे हमारा मङ्गल होय ॥ ३ ॥

कृष्णेति ब्रह्मचारीत्युक्त्वा मार्गं वो दास्यति यं मां स्मृत्वा अगाधा गाधा भवति, यं मां स्मृत्वा अपूतः पूतो भवति, यं मां स्मृत्वा अव्रती व्रती भवति, यं मां स्मृत्वा सकामो निष्कामो भवति, यं मां स्मृत्वाऽश्रोत्रियः श्रोत्रियो भवति ॥४॥

श्रीकृष्णने कहा, कि–हे ब्रजाङ्गनाओं ! कृष्ण ब्रह्मचारी है (तो मार्ग दे) ऐसा कहकर यमुनाके जलके ऊपर चली जाना तो यमुना तुमको मार्ग देगी क्योंकि—मेरा स्मरण करने पर अथाह नदी उथली होजाती है, मेरा स्मरण करके अपवित्र पवित्र हो जाता है, मेरा स्मरण करके अव्रती व्रती होजाता है मेरा स्मरण करने पर सकाम पुरुष निष्काम होजाता है और मेरा स्मरण करके अश्रोत्रिय श्रोत्रिय होजाता है ॥ ४ ॥

श्रुत्वा तद्वाक्यं हि वै रौद्रं स्मृत्वा तद्वाक्येन तीर्त्वा तां सौर्यां हि गत्वाश्रमं पुण्यतमं हि नत्वा मुनिं श्रेष्ठतमं हि रौद्रश्चेति । ५ ॥

श्रीकृष्णकी इस बातको सुनकर रुद्ररूप वा क्रोध मूर्त्ति दुर्वासाका स्मरण करके तथा "कृष्ण ब्रह्मचारी हैं" इस वाक्यका उच्चारण करके ब्रजाङ्गनायें (यमुना

के पार हो) ऋषिके पवित्र आश्रममें पहुँचगयीं और रुद्ररूप परम श्रेष्ठ ऋषिको प्रणाम किया ॥ ५ ॥

दत्वाऽस्मै ब्राह्मणाय क्षीरमयं घृतमयं मिष्टतमं हि वै ॥ ६ ॥

फिर उन्होंने इस ब्राह्मणको क्षीरमय घृतमय परम मीठा भोजन अर्पण किया ॥ ६ ॥

मिष्टतमं हि वै भुक्त्वा हित्वाऽऽशिषं प्रयुज्यान्वाज्ञां त्वदात् कथं यास्यामो तीर्त्वा सौर्यीम् ७

मुनिने उस अतिमिष्ट भोजनको लेलिया और उन को बचे हुए अन्नका प्रसाद तथा आशीर्वाद देकर जानेकी आज्ञा दी, उन्होंने कहा कि—हे महाराज! यमुनाके पार कैसे जायँ? ॥ ७ ॥

सहोवाच मुनिः दूर्वाशिनं मां स्मृत्वा वो दास्यतीति मार्गम् ॥ ८ ॥

मुनिने कहा, कि-दूर्वा खाकर रहनेवाले अथवा निराहार रहनेवाले मेरा स्मरण करने पर यमुना तुम्हें मार्ग देदेगी ॥ ८ ॥

तासां मध्ये हि श्रेष्ठा : गान्धर्वीत्युवाच तं हि वै ताभिरेवं विचार्य ॥ ९ ॥

उनमें श्रेष्ठ गान्धर्वी नामकी व्रजाङ्गना उनके साथ विचार करकै दुर्वासा मुनिसे कहने लगी ॥ ९ ॥

कथं कृष्णो ब्रह्मचारी कथं वा दूर्वाशनो मुनिः १०

हे महाराज ! कृष्ण ब्रह्मचारी कैसे हैं और हे मुने ! आपको केवल दूध खाकर रहनेवाला कैसे मान लिया जाय ? ॥ १० ॥

तां हि मुख्यां विधाय पूर्वमनुकृत्वा तूष्णीमासुः ॥ ११ ॥

इस प्रकार प्रश्न करनेवाली उस गान्धर्वी गोपी को आगे करके अन्य व्रजनारियें मौन धारण किये हुए उसके पीछे खड़ी होगयीं ॥ ११ ॥

शब्दवानाकाशः ॥ १२ ॥

मुनिने कहा, कि-आकाश शब्द गुणवाला है।१२।

शब्दाकाशाभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नाकाशे तिष्ठति, स ह्याकाशस्तं न वेद, स ह्यात्माहं कथं भोक्ता भवामि । स्पर्शवान् वायुः, स्पर्शवायुभ्यां भिन्नस्तस्मिन् वायौ तिष्ठति, वायुर्न वेद तं हि स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि। रूपवदिदं हि तेजः, रूपाग्निभ्यां भिन्नस्तस्मिन्नग्नौ तिष्ठति, अग्निर्न वेद तं हि, स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि । रसवत्य आपो रसाद्भिन्नस्तास्वप्सु तिष्ठति तं ह्यापो न विदुः स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि । गन्धवतीयं भूमिर्गन्धभूमिभ्यां

भिन्नस्तभ्यां भूमौ तिष्ठति भूमिर्न वेद तं हि,
स ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ १३ ॥

परमात्मा शब्द और,आकाशसे भिन्न है, वह आकाशमें विद्यमान है, परन्तु आकाश उसको नहीं जानता, मैं वही आत्मा हूं, फिर भोक्ता कैसे हो सकता हूं ?। वायु स्पर्शगुण वाला है, परमात्मा स्पर्श और वायुसे भिन्न है, वह वायुमें विद्यमान है, परन्तु वायु उसको नहीं जानता, मैं वही आत्मा हूं, फिर भोक्ता कैसे होसकता हूं ?। तेजका गुण रूप है, परमात्मा रूप और अग्नि (तेज) से भिन्न है, वह अग्निमें विद्यमानहै, परन्तु अग्नि उसको नहीं जानता, मैं वही आत्मा हूं, फिर भोक्ता कैसे होसकता हूं ?। जलका गुण रस है, परमात्मा रस और जलसे भिन्न है, वह जलमें रहता है, परन्तु जल उसको नहीं जानता, मैं वही आत्मा हूं, फिर भोक्ता कैसे होसकता हूं ?। गन्ध पृथिवीका गुण है, परमात्मा गन्ध और पृथिवीसे भिन्न है वह पृथिवी में वास करता है, परन्तु पृथिवी उसको नहीं जानती, मैं वही आत्मा हूं, फिर भोक्ता कैसे हो सकता हूं ॥ तात्पर्य यह है, कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, वह केवल सबके अन्तर्यामी हैं, वह कुछ भोग नहीं करते इस लिये ब्रह्मचारी हैं। मैं दुर्वासा जो घृतमय और क्षीरमय अन्नका भोजन करके भी निराहारी हूं, इसका भी कारण यही है। क्योंकि—

ब्रह्मज्ञानके कारणसे आत्मामें और परमात्मामें कोई भेद नहीं है, प्रकृतिके गुणोंसे परमात्मा लिप्त नहीं होसकता यही दुर्वासाका अभिप्राय है ॥ १३ ॥

इदं हि मनस्तेष्वेवं हि मनुते, तानिदं हि गृह्णाति, यत्र सर्वमात्मैवाभूत् तत्र वा कुत्र मनुते क्व वा क्व वा गच्छतीति सं ह्यात्माऽहं कथं भोक्ता भवामि ॥ १४ ॥

मैं आत्मा कैसे भोक्ता होजाऊँगा ? यह बात यद्यपि सत्य है, परन्तु उपाधियुक्त होजाने पर आत्मा को अहंज्ञान होजाता है, इस बातको समझानेके लिये श्रुति कहते हैं, कि–आकाश आदि पञ्चभूतोंमें अधिष्ठित है, इसलिये मन अहंभोक्ता ऐसा अभिमान करता है, वह मन ही इन सब विषयोंको ग्रहण करता है, जिस पुरुषको सर्वत्र आत्मदर्शन होता है अर्थात् जिसका भेदज्ञान नष्ट होजाता है, वह किसके द्वारा मनन करे ? कहां जाय ? वही आत्मा मैं हूं फिर मैं भोक्ता कैसे होसकता हूं ? ॥ १४ ॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरमभिवदाति, तदितर इतरमभिमनुते, तदितर इतरं विजानाति, यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत् केन कं शृणुयात् केन

कमभिवदेत्, केन कं विजानीयात्, येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमेव केन विजानीयात् ॥ १५ ॥

जहाँ द्वैतसा होता है तहाँ ही अन्य अन्यको सूँघता है, अन्य अन्यको देखता है, अन्य अन्यको सुनता है, अन्य अन्यसे बातें करता है, अन्य अन्यका मनन करता है, अन्य अन्यको जानता है और जहाँ सब आत्मा ही होता है, द्वैत होता ही नहीं, विश्व भर ब्रह्ममय प्रतीत होता है, तहाँ कौन किसको सूँघै ? कौन किसको देखै ? कौन किसको सुनै, मनन करै वा जानै ? जिसके द्वारा विश्वभरके सकल पदार्थ जाने-जाते हैं, उस परब्रह्मको किसके द्वारा जानाजासकता है ? जो विज्ञाता है उसको कैसे जानै ? ॥१५॥

अयं हि कृष्णो यो वो हि प्रेष्ठः शरीरद्वयकारणं भवति ॥ १६ ॥

ज्ञानी होनेके कारणसे मुनि तो अभोक्ता होता है, परन्तु कृष्ण भी क्या ऐसे ही ज्ञानी होनेके कारण अभोक्ता हैं, ऐसी चिन्ता करके मुनि कहते हैं, कि हे व्रजाङ्गनाओं ! तुम्हारे परमप्रिय कृष्ण शरीरद्वय अर्थात् व्यष्टिसमष्टिरूप जगत्के कारणमात्र हैं, तात्पर्य यह है, कि-जैसे देहधारी जीव ज्ञानी होनेके कारण अलिप्त होता है श्रीकृष्ण तैसे नहीं हैं, वह तो कारण मात्र हैं, वह तो किसीमें लिप्त होते

ही नहीं इस ही बातको और स्पष्ट करके समझानेके लिये कहते हैं, कि—॥ १६ ॥

द्वौ सुपर्णौ भवतो ब्रह्मणोऽहं संभूतस्तथेतरो भोक्ता भवति, अन्यो हि साक्षी भवतीति ॥१७॥

जीव और ईश्वर, ये दोनों ही ब्रह्मके अंश हैं, इनमें इतर अर्थात् जीव भोक्ता होता है और दूसरा ईश्वर अभोक्ता अर्थात् साक्षिमात्र होता है ॥ १७ ॥

वृक्षधर्मे तौ तिष्ठतः, अतो भोक्त्रभोक्तारौ ॥१८॥

इस विनाशधर्म वाले देहरूप अश्वत्थवृक्षमें वह दोनों स्थिति करते हैं और भोक्ता तथा अभोक्ता होते हैं ॥ १८ ॥

पूर्वो हि भोक्ता भवति तथेतरोऽभोक्ता कृष्णो भवतीति ॥१९॥

इन दोनोंमें पहिला जीव भोक्ता होता है और दूसरा ईश्वर अभोक्ता होता है, कृष्ण ही अभोक्ता ईश्वर हैं ॥ १९ ॥

यत्र विद्याविद्ये न विदामः, विद्याविद्याभ्यां भिन्नो विद्यामयो हि यः स कथं विषयी भवतीति ॥ २० ॥

जिस ब्रह्ममें विद्या वा अविद्या किसीको नहीं पाते हैं, वह विद्या और अविद्या दोनोंसे भिन्न तथा विद्यामय है, वह विषयसेवन करनेवाला कैसे हो सकता है ? ॥ २० ॥

योह वै कामेन कामान् कामयते स कामी भवति यो ह वै त्वकामेन कामान् कामयते सोऽकामी भवति ॥ २१ ॥

जो कामनापूर्ण होकर काम्यवस्तु (विषय भोग) की अभिलाषा करता है वह कामी है और जो कामनाशून्य होकर काम्यवस्तुको स्वीकार करता है या भोगता है वह कामी नहीं है अकामी है ॥ २१ ॥

जन्मजराभ्यां भिन्नः स्थाणुरयमच्छेद्योऽयम् । योऽसौ सूर्ये तिष्ठति, योऽसौ गोषु तिष्ठति, योऽसौ गाः पालयति, योऽसौ गोपेषु तिष्ठति, योऽसौ सर्वेषु वेदेषु तिष्ठति, योऽसौ सर्ववेदैर्गीयते, योऽसौ सर्वेषु भूतेष्वाविश्य भूतानि विदधाति, स वो हि स्वामी भवति ॥ २२ ॥

जो जन्म और बुढ़ापेसे रहित है, जो स्थाणुकी समान अचल है, जिसको कोई काट नहीं सकता, जो सूर्यमें स्थित है, जो गौओंमें स्थित है, जो गौओं का पालन करता है, जो सब गोपोंमें स्थित है, जो सब वेदोंमें स्थित है, सब वेद जिसका गान करते हैं जो सकल भूतोंमें प्रवेश करके सकल भूतोंको रचता है, वह गोबिन्द कृष्ण ही तुम्हारे स्वामी हैं ॥ २२ ॥

सा होवाच गान्धर्वी कथं वाऽस्मासु जातोऽसौ

गोपालः कथं ज्ञातोऽसौ त्वया मुने कृष्णः, को वाऽस्य मन्त्रः, किं स्थानं, कथं वा देवक्या जातः को वाऽस्य ज्यायान् रामो भवति, कीदृशी पूजाऽस्य गोपालस्य भवति, साक्षात्प्रकृतिपरो योऽयमात्मा गोपालः कथं त्ववतीर्णो भूम्यां हि वै सा गान्धर्वी मुनिमुवाच ॥ २३ ॥

उस गान्धर्वीने दुर्वासा मुनिसे कहा, कि-उस गोपालने हमारे कुलमें जन्म क्यों लिया है ?, आपने उन कृष्णको कैसे जाना ?, उनका मंत्र कौनसा है ? उनका ध्यान कौनसा है ?, उन्होंने देवकीके गर्भसे क्यों जन्म लिया है ? उनके बड़े भाई बलराम कौन हैं ? उनकी पूजा कैसी है ? जो प्रकृतिके स्वामी हैं उन्होंने भूतल पर अवतार कैसे धारण करलिया ? ॥ २३ ॥

स होवाच तां हि वै पूर्वं नारायणो देवः, यस्मिन् लोका ओताश्च प्रोताश्च तस्य हृत्पद्माज्जातोऽजयोनिस्तपस्तप्त्वा तस्मै ह वरं ददौ ॥ २४ ॥

उन दुर्वासा मुनिने तिस गान्धर्वी व्रजनारीसे कहा कि-सृष्टिसे पहिले एक नारायण देव ही थे, जिनमें सकल लोक ओतप्रोतभावसे स्थित रहते हैं उनके हृदयकमलमेंसे पद्मयोनि ब्रह्माजीने उत्पन्न होकर तपस्याकी, तब नारायणने उनको वरदान दिया २४

स काममश्नमेव वव्रे तं ह्यस्मै ददौ ॥२५॥

ब्रह्माजीने नारायणसे अपनी इच्छानुसार प्रश्न करनेका वरदान माँगा, नारायणने उनको यही वरदान दिया ॥ २५ ॥

स होवाचाजयोनिर्योऽवताराणां मध्ये श्रेष्ठोऽवतारः को भवति, येन लोकास्तुष्टा देवास्तुष्टा भवन्ति, यं स्मृत्वा मुक्ता अस्मात्संसाराद्भवन्ति, कथं वास्यावतारस्य ब्रह्मता भवति ॥ २६ ॥

अजयोनि ब्रह्माने पूछा, कि--अवतारोंमें ऐसा श्रेष्ठ अवतार कौन है, कि-जिस अवतारसे सब लोक और सब देवता सन्तुष्ट होते हैं तथा जिसका स्मरण करनेसे लोकमें इस संसारसे मुक्ति होती है और इस अवतारको ब्रह्मरूप कैसे मानाजाता है ? २६

स होवाच तं हि नारायणो देवः सकाम्या मेरोः शृङ्गे यथा सप्त सूर्या भवन्ति,तथा निष्काम्या भूगोलचक्रे सप्त पुर्यो भवन्ति, तासां मध्ये साक्षात् गोपालपुरी हीति ॥ २७ ॥

नारायणदेवने ब्रह्माजीसे कहा, कि--मेरुके शिखर पर कामनाशून्य और अभिलषित फल देनेवाली सात पुरी हैं, तैसे भूमण्डल पर भी कामफलदायक कामनाशून्य सात पुरी हैं, जैसे कि--अयोध्या मथुरा

माया, काशी, काञ्ची अवन्तिका और द्वारका, इनमें गोपालपुरी साक्षात् ब्रह्मपुरी है ॥ २७ ॥

सकाम्या निष्काम्या देवानां सर्वेषां भूतानां भवति । यथा हि वै सरसि पद्मं तिष्ठति तथा भूम्यां तिष्ठतीति चक्रेण रक्षिता हि मथुरा तस्माद्गोपालपुरी भवति ॥ २८ ॥

देवता और भूतोंकी सकामा और निष्कामा पुरी हैं, जैसे सरोवरके मध्यमें कमल रहता है तैसे ही भूमण्डल पर चक्रसे रक्षा पायी हुई मथुरा पुरी है, इसलिये ही इसको गोपालपुरी कहते हैं ॥ २८ ॥

बृहद् बृहद्वनं मधोर्मधुवनं तालस्तालवनं काम्यं काम्यवनं बहुलो बहुलवनं कुमुदं कुमुदवनं खदिरः खदिरवनं भद्रो भद्रवनं भाण्डीर इति भाण्डीरवनं श्रीवनं लोहवनं वृन्दाया वृन्दावनमेतैरावृता पुरी भवति ॥ २९ ॥

बड़ा होनेसे बृहद्वन, मधु दैत्यका था इसलिये मधुवन, तालके वृक्षोंका होनेसे तालवन, कृष्णका विहारस्थान होनेसे काम्यवन, बहुला हरिप्रियाका निवासस्थान होनेसे बहुलवन, कुमुदके फलोंकी अधिकतावाला होनेसे कुमुदवन, खदिरकी अधिकता होनेसे खदिरवन, भद्र वृक्षोंके कारण भद्रवन, भाण्डीर नामके वृक्षोंके कारणसे भाण्डीर वन,

श्रीका अधिष्ठान होनेसे श्रीवन, लोह नामक असुर को सिद्धि प्राप्त हुई थी इसकारण लोहवन, वृन्दाने तपस्या की थी इसकारण वृन्दावन, इन सब वनोंसे मथुरा पुरी घिरी हुई है । शिरमेंका सहस्रदल कमल ही मथुरामण्डल है, इस द्वादशदल कमलके भीतर गुरुरूप परमात्माका मुख्य निवासस्थान है, ऐसे ही मथुरामें भी श्रीकृष्णके निवासस्थानरूप द्वादश वन हैं ॥ २९ ॥

तत्र तेष्वेवं गहनेष्वेव देवा मनुष्या गन्धर्वा नागाः किन्नरा गायन्ति नृत्यन्तीति ॥ ३० ॥

उन सब गहन वनोंमें देवता, मनुष्य गन्धर्व, किन्नर और नाग गान तथा नृत्य करते हैं ॥ ३० ॥

तत्र द्वादशादित्या एकादश रुद्रा अष्टौ वसवः सप्त मुनयो ब्रह्मा नारदश्च पञ्च विनायका वीरेश्वरो रुद्रेश्वरोऽम्बिकेश्वरो गणेश्वरो नीकलण्ठेश्वरो विश्वेश्वरो गोपालेश्वरो भद्रेश्वरोऽन्यानि लिङ्गानि चतुर्विंशतिर्भवन्ति ॥ ३१ ॥

इन बारह वनोंमें बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, सात मुनि, पाँच विनायक और वीरेश्वर रुद्रेश्वर, अम्बिकेश्वर गणेश्वर, नीलकण्ठेश्वर, विश्वेश्वर, गोपालेश्वर भद्रेश्वर तथा और सब मिलकर चौवीस लिङ्ग हैं ॥ ३१ ॥

द्वे वने स्तः कृष्णवनं भद्रवनं तयोरन्तर्द्वादशवनानि पुण्यानि पुण्यतमानि तेष्वेव देवास्तिष्ठन्ति सिद्धाः सिद्धिं प्राप्ताः ॥ ३२ ॥

ऊपर कहे बारहों वन, कृष्णवन और भद्रवन इन दोनों वनोंके भीतर हैं, ये सब वन पवित्र और परम पवित्र हैं, इनमें देवता रहते हैं तथा सिद्धि पानेवाले सिद्ध पुरुष रहते हैं ॥ ३२ ॥

तत्र हि रामस्य राममूर्त्तिः प्रद्युम्नस्य प्रद्युम्नमूर्त्तिरनिरुद्धस्यानिरुद्धमूर्त्तिः कृष्णस्य कृष्णमूर्त्तिः

इन सब वनोंमें बलरामकी राममूर्त्ति, प्रद्युम्नकी प्रद्युम्नमूर्त्ति, अनिरुद्धकी अनिरुद्धमूर्त्ति और कृष्णकी कृष्णमूर्त्ति है ॥ ३३ ॥

वनेष्वेवं मथुरास्वेवं द्वादश मूर्त्तयो भवन्ति । एकां हि रुद्रा यजन्ति, द्वितीयां ब्रह्मा यजति, तृतीयां ब्रह्मजा यजन्ति, चतुर्थीं मरुतो यजन्ति, पञ्चमीं विनायका यजन्ति, षष्ठीं वसवो यजन्ति, सप्तमीमृषयो यजन्ति अष्टमीं गन्धर्वा यजन्ति, नवमीमप्सरसो यजन्ति दशमी वै ह्यन्तर्धाने तिष्ठति, एकादशेति स्वपदं गता, द्वादशीति भूम्यां तिष्ठति ॥ ३४ ॥

बारह वनोंमें जैसी मूर्त्तियें हैं, मथुरामें भी तैसी ही बारह मूर्त्तियें हैं। उनमें रौद्री मूर्त्तिकी पूजा रुद्र

करते हैं, ब्राह्मी मूर्त्तिको ब्रह्मा पूजते हैं, दैवी मूर्त्ति को ब्रह्मपुत्र सनकादि पूजते हैं, मानवी मूर्त्तिको मरुत् पूजते हैं, पांचवीं मूर्त्तिको विनायक पूजते हैं, काम्यमूर्त्तिको वसु, ऋषिमूर्त्तिको ऋषि, गन्धर्व मूर्त्ति को गन्धर्व और गोमूर्त्तिको अप्सरायें पूजती हैं, दशवीं मूर्त्ति गुप्त रहती है, ग्यारहवीं मूर्त्तिने विष्णुपद (आकाश) नाम पाया है और बारहवीं मूर्त्ति भूमिमें रहती है ॥ ३४ ॥

तां हि ये यजन्ति ते मृत्युं तरन्ति,मुक्तिं लभन्ते, गर्भजन्मजरामरणतापत्रयात्मकं दुःखं तरन्ति ३५

इस भूमि पर स्थित बारहवीं मूर्त्तिकी पूजा जो करते हैं, वह मृत्युके पार होकर मुक्ति पाते हैं, वह गर्भ, जन्म, जरा, मरण तथा तापत्रयसे छूटजाते हैं

तदप्येते श्लोका भवन्ति । प्राप्य मथुरां पुरीं रम्यां सदा ब्रह्मादिसेविताम् । शंख-चक्र-गदा-शार्ङ्गरक्षितां मूसलादिभिः ॥ ३६ ॥

इस विषयमें ये श्लोक सुनेजाते हैं-शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और मूसलसे रक्षित मथुराकी ब्रह्मादि देवता सेवा करते हैं और उसको पाकर देवता मनुष्य आदि कृतार्थ होते हैं ॥ ३६ ॥

यत्रासौ संस्थितः कृष्णः स्त्रीभिः शक्त्या समाहितः । रामानिरुद्धप्रद्युम्नैः रुक्मिण्या

सहितो विभुः ॥ चतुःशब्दो भवेदेको ह्योङ्कारः समुदाहृतः ॥ ३७ ॥

इस मथुरापुरीमें विभु श्रीकृष्ण, राम, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न इन तीन शक्तियोंके सहित तथा रुक्मिणीके सहित रहते हैं। राम, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, श्रीकृष्ण इन चारों शब्दोंका अर्थ एक ईश्वर है, वेही ॐकारवाच्य है अर्थात् ॐकारके अकार, उकार, मकार तथा विन्दु इन चारमें जैसे ब्रह्मकी जाग्रत् आदि चार अवस्थाओंका बोध होता है तैसे ही वासुदेव, कृष्ण, सङ्कर्षण बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार श्रीब्रह्मकी वह चार अवस्था ही हैं।

तस्माद्देवः परो रजसेति सोऽहमित्यवधार्यात्मानं गोपालोऽहमिति भावयेत्,स मोक्षमश्नुते स ब्रह्मत्वमधिगच्छति, स ब्रह्मविद्भवति ॥३८॥

इसकारण रजोगुण आदि प्रकृतिसे श्रेष्ठ जो देव है वही मैं हूं, ऐसा निश्चय करके अपनेको गोपाल रूप भावना करै, जो ऐसी सोऽहंभावसे उपासना करता है, वह मोक्षको पाता है, ब्रह्मत्वको पाता है और ब्रह्मवेत्ता होता है ॥ ३८ ॥

यो गोपान् जीवान् वै आत्मत्वेनासृष्टिपर्यन्तमालाति स गोपालो भवति, ॐ तत्सत् । सोऽहं परं ब्रह्म कृष्णात्मको नित्यानन्दैकरूपः, सोऽहमोन्तद्गोपाल एव परं सत्यमबाधितं सो-

ऽहमित्यात्मानमादाय मनसैक्यं कुर्यादात्मानं गोपालोऽहमिति भावयेदिति स एवाव्यक्तोऽनन्तो नित्यो गोपालः ॥ ३९ ॥

जो गोप कहिये जीवसमूहोंको सृष्टि पर्यन्त आत्मस्वरूपसे अङ्गीकार करते हैं वही गोपाल हैं (गोपानालाति अङ्गीकरोतीति गोपालः) ॐ तत्सत् का वाच्य जो परब्रह्म है वह मैं ही हूँ, नित्यानन्द-रूप श्रीकृष्ण मैं ही हूँ, जो परम सत्य अबाधित गोपाल हैं वह मैं ही हूँ, ऐसा जानकर मैं गोपाल हूँ ऐसी मनमें भावना करै, यह गोपाल, अव्यक्त, अनन्त और नित्य हैं ॥ ३९ ॥

मथुरायां स्थितिर्ब्रह्मन् सर्वदा मे भविष्यति ।
शंखचक्रगदापद्मवनमालावृतस्तु वै ॥ ४० ॥
विश्वरूपं परंज्योतिः स्वरूपं रूपवर्जितम् ।
हृदा मां संस्मरन् ब्रह्मन् मत्पदं याति निश्चितम् ४१

मैं शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म,और बनमालाको धारण किये हुए सदा मथुरामें स्थिति करूँगा । हे ब्रह्मन् ! जो पुरुष अपने हृदयमें मेरा विश्वरूप, परमज्योति और रूपवर्जित रूपसे स्मरण करते हैं वह निःसंदेह मेरे पदको पाते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मथुरामण्डले यस्तु जंबूद्वीपे स्थितोऽपि वा ।
योऽर्चयेत्प्रतिमां माञ्च स मे प्रियतरो भुवि ४२

जो पुरुष मथुरामण्डलमें अथवा जम्बूद्वीपके और किसी स्थानमें रहकर प्रतिमारूपसे मेरी पूजा करता है वह भूमण्डलपर मेरा परम प्यारा होता है॥

तस्यामधिष्ठितः कृष्णरूपी पूज्यः सदा त्वया ।
चतुर्धा चास्याधिकारभेदत्वेन यजन्ति माम् ४३
युगानुवर्त्तिनो लोका यजन्तीह सुमेधसः ।
गोपालं सानुजं रामरुक्मिण्या सह तत्परम् ४४
गोपालोऽहमजो नित्यः प्रद्युम्नोऽहं सनातनः ।
रामोऽहमनिरुद्धोऽहमात्मानमर्चयेद्बुधः ॥४५॥

मैं मथुरापुरीमें सदा विराजता हूं, तुम्हें तहां सदा मेरी पूजा करनी चाहिये,लोग अधिकार भेदसे चार भेदोंमें कल्पना करके मेरी पूजा करते हैं,अर्थात् स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें भी मेरी पूजा करते हैं, युगके अनुसार दृष्टि रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुष प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम और रुक्मिणी सहित मेरे गोपालरूपकी पूजा करते हैं, मैं गोपाल हूं, मैं अज हूं, मैं नित्य हूं, मैं सनातन हूं, मैं प्रद्युम्न हूं, मैं ही बलराम हूँ मैं ही अनिरुद्ध हूँ, विवेकी पुरुष इन सब में मेरी ही पूजा करते हैं ॥ ४३-४५ ॥

मयोक्तेन स्वधर्मेण निष्कामेन विभागशः ।
तैरहं पूजनीयो वै भद्रकृष्णनिवासिभिः ॥४६॥

अधिकारभेदके अनुसार आश्रमधर्ममें सकाम भावसे वा निष्कामभावसे भद्र और कृष्ण वनके

निवासी मेरी चतुर्व्यूह कृष्णमूर्तिकी पूजा करैं ४६

तद्धर्मगतिहीना ये तस्यां मयि परायणाः ।
कलिना ग्रसिता ये वै तेषां तस्यामवस्थितः ४७

कलियुगसे ग्रसे हुए मनुष्य आश्रमोंके धर्मोंसे भ्रष्ट होकर भी यदि मेरी शरण ले लेंगे तो उनकी मथुरापुरीमें स्थिति होगी अर्थात् यदि मेरी शरण नहीं ली तो मथुरावासका कुछ फल नहीं मिल सकता ४७

यथा त्वं सहपुत्रैस्तु यथा रुद्रो गणैः सह ।
यथा श्रियाभियुक्तोऽहं तथा भक्तो मम प्रियः ४८

हे ब्रह्मन् ! जैसे तुम सनकादि पुत्रोंके साथ रहने में प्रसन्न रहते हो, जैसे रुद्र गणोंके साथ रहने में आनन्दित रहते हैं और जैसे मैं लक्ष्मीके साथ रहने में आनन्द मानता हूँ, तैसे ही मैं भक्तोंके साथ रहने में भी आनन्द मानता हूँ, इसलिये ही भक्त जन मथुरापुरीमें रहना चाहते हैं ॥ ४८ ॥

स होवाचाब्जयोनिश्चतुर्भिर्देवैः कथमेको देवः स्यादेकमक्षरं यद्विश्रुतमनेकाक्षरं कथं भूतम्, स होवाच तं हि वै पूर्वं हि एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत्तस्मादव्यक्तमव्यक्तमेवाक्षरं, तस्मादक्षरान्महत्तत्त्वं, महतो वै अहङ्कारः, तस्मादेवाहङ्कारात्पञ्च तन्मात्राणि तेभ्यो भूतानि तैरावृतमक्षरं भवति, अक्षरोऽहमोङ्कारोऽहमजरोऽहममरोऽहम-

अथोऽहमभूतो ब्रह्माभयं हि वै स मुक्तोऽहमस्मि, अक्षरोऽहमस्मि । सत्तामात्रं विश्वरूपं प्रकाशं व्यापकं तथा । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम् ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी ने कहा, कि–कृष्णादि चारों देवता एक कैसे हैं? और ॐकार नामक एक अक्षरसे अनेक अक्षर कैसे उत्पन्न होगये ? । भगवान्ने उत्तर दिया, कि–सृष्टिसे पहिले एकमेवाद्वितीयं अर्थात् सजातीय–विजातीय–स्वगतभेदशून्य एकमात्र ब्रह्म था, उससे अव्यक्त उत्पन्न हुआ, वह अव्यक्त ही अक्षर है, उस अक्षरसे महत् उत्पन्न हुआ, महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्रा और पञ्चतन्मात्रा से पञ्चभूत उत्पन्न हुए, प्रणव इनसे वेष्टित रहता है । मैं वही अक्षररूपी ॐकार, अजर, अमर, अभय और अमृत हूँ । मैं मुक्त, अविनाशी, सत्तामात्र, विश्वरूप प्रकाशक और व्यापक हूँ । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म मायाके द्वारा चतुर्मूर्ति हुआ है ॥ ४६ ॥

रोहिणीतनयो रामो रकाराक्षरसंभवः ।
तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसंभवः ॥ ५० ॥
प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धो वै मकाराक्षरसंभवः ।
अर्द्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥
कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृति-रुक्मिणी ।
व्रजस्त्रीजनसंभूतः श्रुतिभ्यो ब्रह्मसंज्ञतः ॥५२॥

अकार अक्षरसे रोहिणीनन्दन राम प्रकट हुए हैं, वह विश्वात्मक अर्थात् जाग्रत् अवस्थाकी अधिष्ठात्री समष्टि रूप हैं। उकारसे प्रद्युम्न हुए हैं वह तैजसात्मक अर्थात् स्वप्नावस्थाकी अधिष्ठात्री समष्टिरूप हैं मकारसे अनिरुद्ध उत्पन्न हुए हैं, वह प्राज्ञ अर्थात् सुषुप्तिकी अधिष्ठात्री समष्टिरूप हैं। श्रीकृष्ण इन तीनों अवस्थाओंसे रहित तुरीय पदार्थ हैं, वही अर्धमात्रास्वरूप हैं उनमें सब विश्व प्रतिष्ठित है। जगत् को रचनेवाली कृष्णात्मिका, विन्दुप्रतिपादिका रुक्मिणी मूलप्रकृति है। व्रजाङ्गनाओंके प्रश्न करने पर-जिन श्रुतियोंका प्रकाश हुआ है, उनके द्वारा प्रसिद्ध जो ब्रह्म, उसके प्रकाशके कारण शक्तिरूपा माया और शक्तिमान्में अभेद होनेके कारण रुक्मिणी मूल प्रकृति है ॥ ५०—५२ ॥

प्रणवत्वेन प्रकृतिं वदन्ति ब्रह्मवादिनः।
तस्मादोङ्कारसंभूतो गोपालो विश्वसंभवः॥५३॥
क्लीमोङ्कारस्यैकतत्त्वं पठ्यते ब्रह्मवादिभिः।
मथुरायां विशेषेण मां ध्यायन् मोक्षमश्नुते॥५४॥

क्योंकि—प्रणव असत् सत्वादिगुणस्वरूप है, इसलिये ब्रह्मवादी प्रणवको मूल प्रकृति कहते हैं, इसकारण विश्वसंभव गोपाल प्रकृतिके प्रतिपाद्य हैं। ब्रह्मवादी क्लीं और ॐकार की एकता मानते हैं ऐसे मेरा मथुरामें विशेषरूपसे ध्यान करने पर मनुष्य मोक्ष पाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अष्टपत्रं विकसितं हृत्पद्मं तत्र संस्थितम् ।
दिव्यध्वजातपत्रैस्तु चिह्नितं चरणद्वयम् ॥५५॥
श्रीवत्सलांछनं हृत्स्थं कौस्तुभं प्रभया युतम् ।
चतुर्भुजं शंखचक्रशार्ङ्गपद्मगदान्वितम् ॥ ५६ ॥
सुकेयूरान्वितं बाहुं कण्ठं मालासुशोभितम् ।
द्युमत्किरीटं वलयं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥ ५७ ॥

जिसके आठ दल खिले हुए हैं ऐसे हृदयकमलमें मैं विराजमान रहता हूँ, मेरे दिव्य ध्वजा छत्र आदि चिन्होंसे युक्त दोनों चरणोंका ध्यान करै। फिर मेरे वक्षःस्थलमें लम्बायमान श्रीवत्सके चिह्न की प्रभासे युक्त कौस्तुभमणि का और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा शार्ङ्ग धनुषसे युक्त चारों भुजाओंका ध्यान करै, फिर सुन्दर केयूरोंसे युक्त भुजदण्ड, वनमालासे शोभायमान कण्ठ, दमकते हुए मुकुट और मकराकृति कुण्डलोंका ध्यान करै ॥५५-५७॥

हिरण्मयं सौम्यतनुं स्वभक्तायाभयप्रदम् ।
ध्यायेन्मनासि मां नित्यं वेणुशृङ्गधरं तु वा ।५८।
मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा ।
तत्सारभूतं यद्यत्स्यान्मथुरा सा निगद्यते ॥५९॥

फिर मेरे सुवर्णसमान, भक्तोंको अभय देनेवाले सौम्य शरीरका अथवा वेणुशृङ्गधारी द्विभुज रूपका ध्यान करै। जैसे दहीको मथने पर उसमेंसे मक्खन

निकलता है तैसे ही जिस ब्रह्मज्ञानके द्वारा जगत् को मथने पर सारभूत गोपालमूर्त्ति प्रकट होती है, उस ब्रह्मज्ञानको ही मथुरा कहते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अष्टदिक्पालकैर्भूमिपद्मं विकसितं जगत् ।
संसारार्णवसंजातं सेवितं मम मानसे ॥६०॥
चन्द्रसूर्यत्विषो दिव्या ध्वजा मेरुर्हिरण्मयः ।
आतपत्रं ब्रह्मलोकमधोर्ध्वं चरणं स्मृतम् ॥६१॥
श्रीवत्सस्य स्वरूपश्च वर्त्तते लाञ्छनैः सह ।
श्रीवत्सलाञ्छनं तस्मात्कथ्यते ब्रह्मवादिभिः ६२
येन सूर्याग्निवाक्चन्द्रतेजसा स्वस्वरूपिणा ।
वर्त्तते कौस्तुभाख्यं हि मणिं वदन्तीशमानिनः

आठ दिक्पालोंसे सेवित भूमिरूप कमल मेरे मनमें खिलरहा है, वही संसारसागरसे उत्पन्न हुआ जगत् है । चन्द्रमा सूर्य आदि ज्योतिर्मण्डल दिव्य ध्वजा, मेरु सुवर्णमय छत्रदण्ड, ब्रह्मलोक छत्र और नीचे ऊपर सात पाताल चरण हैं । हृदयमें जो श्रीवत्सलाञ्छन है उसका यह अर्थ है, कि—मैं श्री अर्थात् माया का वल्लभ हूँ, लाञ्छन मेरे विराट अवयवका सूचक है । सूर्य, अग्नि, वाणी, चन्द्रमा ये जिस तेजके द्वारा तेजस्वी हुए हैं, ईश्वरकी आराधना करनेवाले उस तेजको कौस्तुभ मणि कहते ॥ ६०–६३ ॥

सत्वं रजस्तम इति अहंकारश्चतुर्भुजः ।
पञ्चभूतात्मकं शंखं करे रजसि संस्थितम् ६४

सत्त्व, रज, तम ये तीन गुण और अहङ्कार येही चार भुजा हैं और शङ्ख ही पञ्चभूतात्मक रजोगुण रूपसे हाथमें स्थित है ॥ ६४ ॥

बालस्वरूपमत्यन्तं मनश्चक्रं निगद्यते ।
आद्यमाया भवेच्छार्ङ्गं पद्मं विश्वं करे स्थितम् ॥

अत्यन्त बालस्वरूप अर्थात् चञ्चल मन ही चक्र कहलाता है, आद्या माया शार्ङ्ग धनुष है और विश्व ही भगवान्के हाथमें का कमल है ॥ ६५ ॥

आद्या विद्या गदा वेद्या सर्वदा मे करे स्थिता
धर्मार्थकामकेयूरैर्दिव्यैर्दिव्यमयेरितैः ॥ ६६ ॥

आद्या विद्या को गदा जानो, वह सदा मेरे हाथ में स्थित रहती है, धर्म अर्थ काम ही मेरी भुजाओं में के केयूर हैं ॥ ६६ ॥

कण्ठन्तु निर्गुणं प्रोक्तं माल्यते आद्ययाऽजया ।
माला निगद्यते ब्रह्मंस्तव पुत्रैस्तु मानसैः ॥

निर्गुण ब्रह्म कण्ठ है, इस कण्ठको जिस अजा और आदि मायाके द्वारा अर्थात् प्रपञ्चरूप आभूषण के द्वारा भूषित कियाजाता है उसको ही हे ब्रह्मन! तुम्हारे पुत्र सनक सनन्दन आदि माला कहते हैं ॥

कूटस्थं सत्स्वरूपञ्च किरीटं प्रवदन्ति माम् ।

क्षरोत्तमं प्रस्फुरन्तं कुण्डलं युगुलं स्मृतम् ।६८।

मैं कूटस्थ नित्य हूँ, अतः सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण पण्डित मुझे किरीट कहते हैं और मेरे क्षर तथा उत्तम अक्षरको युगुल कुण्डल कहते हैं ॥ ६८ ॥

ध्यायेन्मम प्रियो नित्यं स मोक्षमधिगच्छति ।
स मुक्तो भवति तस्मै स्वात्मानं तु ददामि वै ॥

जो भक्त ऐसे भावसे मेरा ध्यान करता है वह मोक्ष पाता है, मैं उसको अपना आत्मा अर्पण कर देता हूँ।

एतत्सर्वं मया प्रोक्तं भविष्यद्वै विधे तव ।
स्वरूपं द्विविधञ्चैव सगुणं निर्गुणात्मकम् ।७०।

हे ब्रह्मन् ! मैंने तुमसे यह सब भविष्यत् कह-दिया, मेरा स्वरूप दो प्रकारका है, एक सगुण और दूसरा निर्गुण ॥ ७० ॥

स होवाचाब्जयोनिर्व्यक्तानां मूर्तीनां प्रोक्तानां कथं त्वाभरणानि भवन्ति, कथं वा देवा यजन्ति, रुद्रा यजन्ति, ब्रह्मा यजति, ब्रह्मजा यजन्ति, विनायका यजन्ति, द्वादशादित्या यजन्ति, वसवो यजन्ति, अप्सरसो यजन्ति, गन्धर्वा यजन्ति, स्वपदानुगान्तर्धाने तिष्ठति, कां मनुष्या यजन्ति ॥ ७१ ॥

ब्रह्माने कहा, कि—उन पूर्वोक्त सकल मूर्त्तियों

के आभूषण कैसे होते हैं और देवता किसप्रकार पूजा करते हैं ? रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्माके पुत्र, विनायक, आदित्य, वसु, अप्सरा और गन्धर्व ये किसप्रकार पूजा करते हैं ? स्वपदानुगा कौन हैं, अन्तर्धान कौन रहते हैं और मनुष्य किसकी पूजा करते हैं ॥ ७१ ॥

स होवाच तं हि नारायणो देव आद्या अव्यक्ता द्वादश मूर्त्तयः सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु देवेषु सर्वेषु मनुष्येषु तिष्ठन्ति ॥ ७२ ॥

नारायणने कहा, कि–पीछे कही हुई बारह मूर्त्तियों का कोई आभूषण नहीं है, वह सब लोकोंमें, सब देवताओंमें और सब मनुष्योंमें स्थित हैं ॥ ७२ ॥

रुद्रेषु रौद्री ब्रह्मण्येवं ब्राह्मी देवेषु दैवी, मानुषेषु मानवी विनायकेषु विघ्ननाशनी आदित्येषु ज्योतिर्गन्धर्वेषु गान्धर्वी अप्सरःस्वेवं गौर्वसुष्वेवं काम्या अन्तर्धानेऽप्रकाशिनी, आविर्भावतिरोभावा स्वपदे तिष्ठति राजसी तामसी सात्विकी मानुषी विज्ञानघन–आनन्दघन–आनन्दसच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति ॥ ७३ ॥

रुद्रलोकमें रौद्री, ब्रह्मलोकमें ब्राह्मी, देवलोकमें दैवी, मनुष्यलोकमें मानवी, विनायकलोकमें ज्योति, गन्धर्वलोकमें गान्धर्वी, अप्सरोलोकमें गौ "गीयते इति गौः" अर्थात् गीता, वसुलोकमें काम्या और

अन्तर्धानकी मूर्त्ति अव्यक्त रहती है। जिसका आविर्भाव है और तिरोभाव नहीं है, ऐसी मूर्त्ति स्वपद कहिये वृन्दावनमें स्थित रहती है-वह मूर्त्ति तीन प्रकारकी है सात्विकी, राजसी और तामसी। मानुषी मूर्त्ति विज्ञानघन आनन्दघन और सच्चिदानन्दैकरसरूप भक्तियोगमें निवास करती है ॥७३॥

ॐ प्राणात्मने ॐ तत्सद् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै प्राणात्मने नमो नमः ॥ ७४ ॥

जो प्राण नामक वायुका अन्तर्यामी है और भूः भुवः स्वः ये तीन लोक जिसकी विभूति हैं उसको नमस्कार है ॥ ७४ ॥

ॐ श्रीकृष्णाय गोबिन्दाय गोपीजनवल्लभाय ॐतत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥

श्रीकृष्ण गोबिन्द गोपीवल्लभ को नमस्कार है भू आदि तीनों लोक जिसकी विभूति हैं उसको नमस्कार है ॥ ७५ ॥

ॐ अपानात्मने ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै अपानात्मने वै नमो नमः ॥ ७६ ॥

जो अपान वायुका अन्तर्यामी है और भू आदि तीनों लोक जिसकी विभूति हैं उसको नमस्कार है।

ॐ कृष्णाय रामाय प्रद्युम्नायानिरुद्धाय ॐ तत्सद् भूर्भुवः स्वस्तस्मै नमो नमः ॥७७॥

कृष्ण, राम, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूह को तथा भू आदि तीनों लोक जिसकी विभूति हैं उसको नमस्कार है ॥ ७७ ॥

ॐ व्यानात्मने ॐ तत्सद् भूर्भुवः स्वस्तस्मै व्योमात्मने नमो नमः ॥ ७८ ॥

जो व्यान वायुका अन्तर्यामी और भू आदि त्रिलोकी जिसकी विभूति है उसको नमस्कार है ॥

ॐ श्रीकृष्णाय ॐ रामाय ॐ तत्सत् ॐ भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ७९ ॥

भू आदि लोक जिनकी विभूति हैं उन कृष्ण और रामको प्रणाम है ॥ ७९ ॥

ॐ उदानात्मने ॐ तत्सत् ॐ भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै उदानात्मने नमो नमः ॥ ८० ॥ ॐ कृष्णाय देवकीनन्दनाय ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ८१ ॥ ॐ समानात्मने ॐतत्सत् ॐभूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः।८२। ॐ गोपालायनिरुद्धाय निजस्वरूपाय ॐतत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥८३॥ ॐयोऽसौ प्रधानात्मा गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ८४ ॥ ॐ योऽसाविन्द्रियात्मा गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो

नमः ॥ ८५ ॥ ॐ योऽसौ भूतात्मा गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ।८६। ॐयोऽसौ उत्तमपुरुषो गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ८७ ॥ ॐ योऽसौ परब्रह्म गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ८८ ॥ ॐ योऽसौ सर्वभूतात्मा गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ।८९॥ ॐ योऽसौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिमतीतो तुर्यातीतो गोपालः ॐ तत्सत् भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥ ९० ॥

जो देवकीनन्दन श्रीकृष्ण हैं, जो समान वायुके अन्तर्यामी हैं, जो गोपाल, अनिरुद्ध और निजस्वरूप हैं, जो प्रधानात्मा गोपाल हैं, जो इन्द्रियोंके अन्तर्यामी गोपाल हैं, जो भूतोंके अन्तर्यामी गोपाल है, जो उत्तम पुरुष गोपाल हैं, जो परब्रह्म गोपाल हैं, जो सर्वभूतात्मा गोपाल हैं, और जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके अतीत तुरीय अर्थात् विराट, हिरण्य गर्भ, कारण इन तीन अवस्थाओंके अतीत वासुदेव नामक तुरीय हैं, भूः भुवः स्वः जिन की विभूति है उनको वार२ नमस्कार है ॥८०-९०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व-

भूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥६१॥

जो एक होकर सकल भूतोंमें प्रविष्ट होरहा है, वह सर्वव्यापी सकल भूतोंका अन्तरात्मा है वह सकल कर्मोंका फल देता है, सकल भूत उसमें ही निवास करते हैं, वह साक्षिस्वरूप विशुद्ध चैतन्य और गुणोंके पार है ॥ ६१ ॥

रुद्राय नमः। आदित्याय नमः। विनायकाय नमः। सूर्याय नमः। विद्यायै नमः। इन्द्राय नमः। अग्नये नमः। यमाय नमः। निर्ऋतये नमः। वरुणाय नमः। वायवे नमः। कुवेराय नमः। ईशानाय नमः। ब्रह्मणे नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥ ६२ ॥

रुद्रको नमस्कार है, आदित्यको नमस्कार है, विनायकको नमस्कार है, सूर्यको नमस्कार है, विद्याको नमस्कार है, इन्द्रको नमस्कार है, अग्निको नमस्कार है, यमको नमस्कार है, निर्ऋतिको नमस्कार है, वरुणको नमस्कार है, वायुको नमस्कार है, कुवेरको नमस्कार है, ईशानको नमस्कार है, ब्रह्मको नमस्कार है, सब देवताओंको नमस्कार है ॥६२॥

दत्त्वा स्तुतिं पुण्यतमां ब्रह्मणे स्वस्वरूपिणे।
कर्तृत्वं सर्वभूतानामन्तर्धाने बभूव सः ॥६३॥

भगवान् निजस्वरूप ब्रह्माको परमपवित्र स्तुति और सकल भूतोंका कर्त्तापना देकर अन्तर्धान होगये ॥ ६३ ॥

ब्रह्मणा ब्रह्मपुत्रेभ्यो नारदाय यदा श्रुतम् ।
तथा प्रोक्तन्तु गान्धर्वि गच्छध्वं स्वालयान्तिकम्॥

दुर्वासा कहते हैं, कि—हे गान्धर्वी ! यह तापनी उपनिषद् ब्रह्माजीसे सनकादिकोंने पाया था, उनसे नारदजीने सुना था, उनसे मैंने जैसा सुना था तैसा ही तुम्हें सुना दिया, अब तुम अपने घरोंको जाओ॥६४॥

गोपालतापनी उपनिषत्समाप्त.